पांचवां अध्याय

।। सारांश।।

विश्लेषण :- गीता के इस अध्याय 5 में गीता ज्ञान कहने वाले ने अपने से अन्य परमेश्वर की विशेष जानकारी बताई है। श्लोक नं. 14-21, 24, 25, 26 में विशेष वर्णन है जो इस प्रकार है :-

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 14 का अनुवाद :-*

गीता ज्ञान बोलने वाले ने अपने से अन्य कुल के मालिक की महिमा बताई है कि ''प्रभु यानि कुल का स्वामी सर्व प्रथम विश्व का संजन करता है। तब न तो किसी को कर्तापन का, न कर्मों का आधार होता है, न कर्मफल के संयोग ही आधार होते, परंतु सर्व प्राणी अपने स्वभाववश किए कर्म का फल ही बरत रहे होते हैं।

❖ *अध्याय 5 श्लोक 15 का अनुवाद :- सर्वव्यापक सर्व का स्वामी यानि पूर्ण परमात्मा न किसी का पाप और न किसी के शुभ कर्म का ही प्रतिफल देता है यानि निर्धारित किए नियम अनुसार जीव फल प्राप्त करता है, किंतु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढ़का हुआ है जिससे तत्वज्ञानहीनता के कारण जानवरों तुल्य सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं अर्थात् स्वभाववश शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म करके क्षणिक सुखों में आसक्त हो रहे हैं। जो साधक शास्त्रविधि अनुसार भक्ति कर्म करते हैं। उनके पाप प्रभु क्षमा कर देता है, अन्यथा संस्कार ही बरतता है अर्थात् प्राप्त करता है।(5/15) इसी का विस्तत विवरण श्लोक 16-17 में पढ़ें।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 16 का अनुवाद :- परंतु जिनका वह अज्ञान पूर्ण परमात्मा के द्वारा संत रूप में प्रकट होकर आत्मज्ञान तथा परमात्म ज्ञान रूपी तत्वज्ञान बताया जाता है। जिसे तत्वदर्शी संत आगे प्रचार करते हैं, उस आत्मज्ञान द्वारा नष्ट हो गया है। उनका वह तत्वज्ञान (तत्परम्) गीता ज्ञान दाता से दूसरे उस पूर्ण परमात्मा को सूर्य की तरह प्रकाशित कर देता है यानि अज्ञान अंधेरा पूर्ण रूप से समाप्त करके परम अक्षर ब्रह्म की महिमा का ज्ञान करता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 17 का अनुवाद :- उस तत्वज्ञान के आधार से भक्ति करके साधक पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है और पुनरावर्ती यानि जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 18 का अनुवाद :- तत्वज्ञानी साधक सब जीवों को समान दष्टि से देखता है क्योंकि सबकी आत्मा एक जैसी है जो कर्मों अनुसार अन्य शरीरों को धारण किए है।(5/18)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 19 का अनुवाद :- जिनका मन इस प्रकार स्थित है, वह संसार में रहते हुए भी निर्दोष होकर वे (ब्रह्मणि) सच्चिदानंद घन ब्रह्म में स्थित है।(5/19)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 20 का अनुवाद :- जो तत्वज्ञान के आधार से सुख-दुःख को परमात्मा की रजा समझता है। वह (ब्रह्मवित्) परमात्मा के ज्ञान का जानने वाला साधक (ब्रह्मणि) सच्चिदानंद घन परमात्मा में स्थित है।(5/20)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 24 का अनुवाद :- तत्वज्ञानी साधक अन्तरात्मा से पूर्ण परमात्मा से जुड़ा है, वह (योगी) साधक शांत ब्रह्म यानि परमशांति युक्त परमात्मा अर्थात् सच्चिदानंद घन परमात्मा को प्राप्त होता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 25 का अनुवाद :- तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर शास्त्रविधि अनुसार*

साधना करने से जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं। तत्वज्ञान से जिनके सब संशय निवत हो गए हैं। वह सब प्राणियों का हितैषी होता है। वह सत्य भक्ति व शुभ कर्म करने वाला (ऋषयः) तत्वज्ञानी साधक (ब्रह्म निर्वाणम् लभन्ते) शांत ब्रह्म यानि सुखदायी शांत परमात्मा सतपुरूष को प्राप्त होते हैं। काल ब्रह्म तो उग्र प्रभु है। इसके लोक में कोई भी शांति से नहीं रह सकता। सबको कोई न कोई कष्ट बना ही रहता है। परंतु सत्यलोक में कोई कष्ट नहीं है। सर्व प्राणी शांति से रहते हैं। वह शांत परमात्मा है।

❖ *अध्याय 5 श्लोक 26 का अनुवाद :- विकार रहित व मन-जीते ज्ञानी आत्मा के लिए सब ओर पूर्ण परमात्मा ही विद्यमान में हैं यानि पूर्ण परमात्मा की सत्ता सर्व के ऊपर दिखती है।*

अध्याय 5 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि कर्म सन्यास और कर्मयोग में कौन सा श्रेष्ठ है?

कर्म सन्यास का विवरण :- कर्म सन्यास दो प्रकार से होता है, 1. एक तो सन्यास वह होता है जिसमें साधक परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित होकर घर त्यागकर हठ करके जंगल में बैठ जाता है तथा शास्त्र विधि रहित साधना करता है, दूसरा घर पर रहते हुए भी हठयोग करके घण्टों एक स्थान पर बैठ कर शास्त्र विधि त्याग कर साधना करता है, ये दोनों ही कर्म सन्यासी हैं।

कर्मयोग का विवरण :- यह भी दो प्रकार का होता है। एक तो बाल-बच्चों सहित सांसारिक कार्य करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना करता है या शादी न करवा करके घर पर या किसी आश्रम में रहता हुआ सांसारिक कर्म अर्थात् सेवा करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है, ये दोनों ही कर्मयोगी हैं।

दूसरी प्रकार के कर्मयोगी वे होते हैं जो बाल-बच्चों में रहते हैं तथा साधना शास्त्रविधि विरूद्ध करते हैं या शादी न करवाकर किसी आश्रम में सेवा करते हैं तथा साधना भी शास्त्रविधि के विपरित करते हैं। ये भी कर्म योगी ही कहलाते हैं।

।। कर्म सन्यासी से कर्म योगी उत्तम हैं।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 1 का अनुवाद :- हे (कष्ण) कष्ण! आप एक ओर (कर्मणाम्) कर्मों के (सन्यासम्) सन्यास की (च) और (पुनः) फिर कर्मों के (योगम्) कर्म करने की प्रशंसा कर रहे हैं। (एतयो) इन दोनों में से (यत्) जो (एकम्) एक मेरे लिए (श्रेयः) कल्याणकारक हो (तत्) वह (सुनिश्चितम्) भली-भांति निश्चित करके (ब्रूहि) कहिये।*

केवल हिन्दी :- हे कष्ण! आप एक ओर तो कर्मों के सन्यास की महिमामण्डन कर रहे हैं और फिर कर्मों के योग यानि कर्मों के संयोग की अर्थात् कर्म करने की प्रशंसा कर रहे हैं। इन दोनों में से जो एक मेरे लिए कल्याणकारक हो, उसको सुनिश्चित करके कहिए।(5/1)

❖ *अध्याय 5 श्लोक 2 का मूल पाठ :-*

सन्यासः कर्मयोगः च निःश्रेयः अकरौ उभौ, तयो तू कर्मसन्यासात् कर्म योग विशिष्यते ।(2)

अनुवाद तथा *भावार्थ : गीता अध्याय 5 श्लोक 2 का भावार्थ है कि तत्वदर्शी सन्त के अभाव से जो शास्त्र विरुद्ध साधक हैं वे दो प्रकार के हैं, एक तो कर्म सन्यासी, दूसरे कर्म योगी। दोनों की साधना अमंगलकारी तथा न करने वाली अर्थात् व्यर्थ हैं क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में कहा है कि शास्त्रविधि त्याग कर जो मनमाना आचरण अर्थात् पूजा करते हैं उनको लाभ नहीं होता श्लोक 24 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए जो साधना त्यागने की है अर्थात् न करने वाली है तथा*

जो करने वाली है उनके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानना। शास्त्रों का यर्थाथ ज्ञान तत्वदर्शी सन्त बताता है उसी से प्राप्त करके भक्ति करना लाभदायक है (प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13)। फिर भी इन उपरोक्त शास्त्र विरूद्ध दोनों साधकों में कर्मसन्यासी से कर्मयोगी अच्छा है, क्योंकि कर्मयोगी जो शास्त्र विधि रहित साधना करता है, उसे जब कोई तत्वदर्शी संत का सतसंग प्राप्त हो जायेगा तो वह तुरन्त अपनी शास्त्र विरुद्ध पूजा को त्याग कर शास्त्र अनुकूल साधना पर लग कर आत्म कल्याण करवा लेता है। परन्तु कर्म सन्यासी दोनों ही प्रकार के हठ योगी घर पर रहते हुए भी, जो कान-आंखें बन्द करके एक स्थान पर बैठ कर हठयोग करने वाले तथा घर त्याग कर उपरोक्त हठ योग करने वाले तत्वदर्शी संत के ज्ञान को मानवश स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उन्हें अपने त्याग तथा हठयोग से प्राप्त सिद्धियों का अभिमान हो जाता है तथा गह त्याग का भी अभिमान सत्यभक्ति प्राप्ति में बाधक होता है। करोड़ों कर्म सन्यासियों में कोई-कोई ही सत्य भक्ति स्वीकार करता है। इसलिए शास्त्र विरुद्ध कर्म सन्यासी साधक से शास्त्र विरुद्ध कर्मयोगी साधक ही अच्छा है। इसी प्रकार सन्यास लेकर किसी आश्रम में रह कर शास्त्र विधी अनुसार साधना लेकर आश्रम में रहने वाले कामचोर से तो कर्मयोगी अच्छा है क्योंकि सन्यास धारण करने वाले को अपने सन्यास का अभिमान हो जाता है।

गीता सार :- अध्याय 5 के श्लोक 2 में वर्णन है कि कर्म सन्यास (घर छोड़कर जाने वाले साधक) से कर्मयोग (घर पर बाल-बच्चों सहित रहते हुए या विवाह न करवा कर सांसारिक कार्य करता हुआ घर या आश्रम में रहने वाले साधक) श्रेष्ठ हैं। उदाहरण के लिए राजा अम्बरीष, राजा जनक, परम पूज्य कबीर साहिब जी (कविर्देव पूर्ण परमात्मा होते हुए भी लीला करके यही सिद्ध कर रहे हैं कि जैसे मैं अपना कर्म करता हुआ साधना कर रहा हूँ यही कर्मयोग श्रेष्ठ है), संत गरीबदास साहेब जी महाराज, श्री नानक देव जी, संत नामदेव जी, संत रविदास जी आदि-2 सन्त व परमेश्वर कबीर जी कर्मयोगी थे। साथ में यह भी कहा कि यदि साधना ठीक है तो चाहे घर रहो या बाहर आश्रम आदि में दोनों ही बराबर उपलब्धि प्राप्त करेंगे। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धि के विषय में स्पष्ट किया है अध्याय 18 श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता हैं अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरूद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। अध्याय 18 श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

गरीब, डेरे डांडे खुश रहो, खुशरे लहे न मोक्ष। ध्रू प्रहलाद उधर गए, तो डेरे में क्या दोष।।
गरीब, केले की कोपीन है, फूल पान फल खाहीं। नर का मुख नहीं देखते, बस्ती निकट न जाहीं।।
गरीब, वो जंगल के रोज हैं, मनुष्यों बिदके जाहीं। निश दिन फिरैं उजाड़ में, साहिब पावे नाहीं।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त तत्वज्ञान में संत गरीबदास जी ने बताया है कि जो तत्वज्ञानहीन व्यक्ति कहते हैं कि आजीवन ब्रह्मचारी रहने वाला तथा सर्व भौतिक सुविधाओं को

त्यागकर वन में निवास करने वाला ही मोक्ष प्राप्ति करता है। यह सब अज्ञानता है। तत्वदर्शी संत से ज्ञान व दीक्षा लेकर मर्यादा में रहकर साधना करने से मोक्ष होता है। उदाहरण दिया है कि डेरे डांडे यानि अपने घर पर खुशी के साथ रहो और सत्य साधना करो। यदि आजीवन ब्रह्मचारी रहने मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाता है तो खुसरे (नपुसंक) का मोक्ष हुआ नहीं, देखा ना सुना। सत्य साधना चाहे गहस्थ करो, चाहे ब्रह्मचारी, चाहे खुसरे करो, सबका मोक्ष हो जाता है। जैसे कहते हैं कि ध्रुव तथा प्रहलाद का मोक्ष हुआ है तो वे दोनों ही विवाहित थे, राजा रहे। फिर गहस्थी में क्या दोष है? अर्थात् गहस्थी भी मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जो कर्म सन्यासी घर त्यागकर जंगल में चले जाते हैं तथा निःवस्त्र होकर केवल केले के पत्ते की कोपीन (लंगोट) बना कर फल-फूल व पत्तों का आहार करते हैं, नगर में नहीं जाते हैं, मनुष्यों के दर्शन भी नहीं करते हैं, जंगल में गुफा बनाकर या झाड़-बोझड़ों में अपना सारा जीवन बिताते हैं, यदि उनकी साधना शास्त्र विधि अनुसार नहीं है तो वे परमात्मा प्राप्ति नहीं कर सकते। क्योंकि वे तो जंगली जानवर रोज के समान हैं। जंगल में गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास से परेशानी तथा दुःख व जंगली हिंसक जानवरों का भय बना रहता है। भक्ति तो तब हो सकती है जब गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास का समय पर समाधान हो जाए। यह सुविधा जंगल में कर्म सन्यासी को प्राप्त नहीं हो सकती। फिर उन्हें अपने त्याग का अभिमान हो जाता है उस कारण वह भक्ति हीन हो जाता है।

कबीर, मन के मारे बन गए, बन तज बस्ती मांह। कहैं कबीर मैं क्या करूँ, मन तो मानै नांह।।

भावार्थ :- पूर्व जन्म के भक्ति संस्कारों से प्रेरित साधक वन में जाकर किसी अज्ञानी गुरू को पूर्ण गुरू मानकर दीक्षा लेकर घोर तप साधना करता है। उससे अपनी भक्ति सफल मानकर संतुष्ट हो जाता है। कुछ समय पश्चात् जब परमात्मा परीक्षा लेता है तो तत्वज्ञान के अभाव से असफलता हाथ लगती है। पुनः विवाह करके घर लौट आता है। उदाहरण के लिए श्रंगी ऋषि की कथा :-

।। श्रंगी ऋषि जैसे कर्मसन्यासी भी असफल रहे।।

एक समय श्रंगी ऋषि कर्म सन्यासी बन कर वर्षों तक जंगल में चले गए। फिर कुछ समय जंगल में भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए कठिन हठयोग अभ्यास किया। निराहार प्राण-अपान वायु को वश करके समाधिस्थ हो जाना जिससे शरीर को गर्मी-सर्दी कम लगती है। जैसे 'ओ३म' मन्त्र (जो वेदों व गीता में ब्रह्म उपासना का सही नाम है) के जाप को करते हुए समाधी प्राप्त करना, शास्त्र विधि रहित मनमाना आचरण करने वालों का ध्यान यज्ञ कहलाता है। यज्ञ का प्रतिफल स्वर्ग या राज प्राप्ति तथा फिर चौरासी लाख योनियों में कष्ठ उठाना। क्योंकि ध्यान यज्ञ करने के लिए बैठा रहना होता है। फिर वह बैठना तप बन जाता है। ओ३म मन्त्र से उपलब्धि :--सिद्धियाँ व स्वर्ग प्राप्ति।

गरीब, ओंकार ईश्वरी माया, जिन ब्रह्मा विष्णु महेश भ्रमाया।
गरीब, ओ३म आनंदी लहर है रंग होरी हो। सोहं मुक्ता सिंध राम रंग होरी हो।

तप से राज प्राप्ति। फिर दोनों को भोगकर नरक व चौरासी लाख योनियों में कष्ट सदा बना रहता है। क्योंकि प्राणायाम द्वारा श्वांस छोटा करके ध्यान (Meditation) से समाधी लगती है। उसमें श्वांस रोकने से वायु के कीटाणु जो श्वांस रूकने से मर जाते हैं उनका पाप अभ्यासी को भोगना पड़ता है। क्योंकि तीन लोक व ब्रह्म तक की साधना में जैसे कर्म प्राणी करता है सर्व भोग्य होते हैं। पुण्य स्वर्ग में और पाप नरक व चौरासी लाख जूनियों में भोगना पड़ता है। इसके विपरीत

प्रभु के द्वारा दिए भक्ति साधन के मत (सिद्धान्त) के विरुद्ध साधना करने से दोष लगता है, प्रभु की आज्ञा की अवहेलना करने के कारण वह पाप और भयंकर होता है। श्रंगी ऋषि जी ने श्वांस रोक कर तथा अल्प आहार करने का अभ्यास कर लिया। वे वक्ष की ओर मुख करके साधना करते तथा सारा दिन में एक बार वक्ष की छाल पर जिह्वा से चाटते थे। बस यह आहार था। फिर कुछ वर्षों के बाद अयोध्या के बाहर नजदीक ही जंगल में आकर बैठ गए तथा अपनी साधना का प्रदर्शन करने लगे। अयोध्या वासियों के लिए एक विशेष चर्चा तथा आकर्षण का कारण बन गए।

एक दिन राजा दशरथ की लड़की शांता भी अपने पिता से आज्ञा लेकर ऋषि के दर्शनार्थ गई। वह श्रंगी ऋषि के स्वरूप को देख कर आसक्त हो गई। फिर उसको उठाने का प्रयत्न करने लगी। किसी ने बताया कि जहाँ यह जिह्वा से छाल को चाटता है वहां कुछ शहद लगा दो तथा साथ में खाना ले जाना। जब यह आँखें खोले तो इसे खाना खिलाना। फिर यह ज्यादा समाधिस्थ नहीं हो पाएगा। ऐसा ही किया। ऋषि जी ने शहद के लगने से आनन्द आया तथा कई बार छाल को चाटा। दूसरे दिन आँखें खोली तथा खीर खाई। राजा दशरथ श्रंगी ऋषि को पहुँचा हुआ योगी मान कर घर ले गया तथा गुरु बनाया। पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, तब श्रंगी ऋषि ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने की सलाह दी। दिन निश्चित हुआ। उसी दौरान श्रंगी ऋषि से शांता का प्रेम सम्बन्ध हो गया। परंतु राजा दशरथ ने मना कर दिया कि हम क्षत्री हैं, यह ब्राह्मण है, इसलिए विवाह असंभव है। एक ऋषि ने लड़की को गोद लिया। फिर उनका विवाह कर दिया। ऋषि अपनी पत्नी को लेकर दूर जंगल में चला गया। वहाँ कुटी बनाकर रहने लगा। इसका प्रमाण श्री तुलसीदास कृत रामायण के बाल काण्ड 'रामकलेवा' में (पष्ठ नं. 274) में निम्न साखियों में है।

बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार नन्दोई। एक बात तुम सौ हम पूछें लला न राखहु गोई।।
होत ब्याह सम्बन्ध सबन कौं अपनी ही जातिहि माही। निज बहिनी श्रंगी ऋषि को तुम कैसे दियौ विवाही।।
की उनको मुनीश लै भाग्यौ की बौई संग लागी। ऐसी बात बतावहु लालन तुम रघुवंश अदागी।।

यहां पर आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज कहते हैं पूर्ण परमात्मा की सही साधना न मिलने से यह प्राणी समझ लेता है मैं ठीक कर रहा हूँ। परंतु प्रतिफल गलत होता है।

गरीब, डींभ करै डूंगर चढें, अंतर झीनी झूल। जग जाने बंदगी करे, बोवै शूल बबूल।।1
गरीब, जैसे चंदन शर्प लिपटाई। शीतल तन भया विष नहीं जाई।।2

भावार्थ :- पाखण्ड (डींभ) करके (डूंगर) ऊँचे स्थान पर चढ़कर घोर तप करके प्रदर्शन करने वालों के अंदर विकार प्रभावित रहते हैं। जैसा कि गीता अध्याय 3 श्लोक 6 में भी प्रमाण है जो मूढ़ बुद्धि आत्मा समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से इन्द्रियों का चिंतन करता रहता है, वह मिथ्याचारी यानि दम्भी (पाखंडी) कहा जाता है। ऊपर वाणी में भी कहा है कि जनता को दिखाने के लिए पाखण्ड करके ऊँचे स्थान पर हठ करने का ढ़ोंग करता है। अंदर सर्व विकार मचल रहे हैं। भोली जनता समझ रही है कि बहुत बड़ा भक्त है कितनी कठिन साधना कर रहा है, परंतु वह शास्त्रविधि त्यागकर मनकल्पित घोर तप करके अपने भविष्य में काँटे बीज रहा है क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 5-6 में इस प्रकार के तप को करने वाले असुर स्वभाव के कहा है।

सतनाम व सारनाम की भक्ति (कमाई) बिना अन्य साधना पूज्य परमेश्वर कविर्देव (कबीर प्रभु) के बताए अनुसार आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने ऐसी बताई जैसे सर्प गर्मियों में चन्दन के वक्ष से चिपक जाते हैं। उन्हें महसूस होता है कि हमें शांति मिल रही है परन्तु उनका विष कम नहीं हो रहा है जिसके कारण उन्हें गर्मी तथा बेचैनी-भय बना रहता है।

इसी प्रकार साधक चाहे ब्रह्म (काल) उपासना कितनी ही करें उनके विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार) कम नहीं होते जो उनके दुःख का कारण है। इसलिए कर्म सन्यासी से कर्मयोगी उत्तम है।

।। वेदों में वर्णित साधना से विकार रहित नहीं होते।।

अध्याय 5 के श्लोक 7 का भाव है कि जो व्यक्ति आत्म तत्व में आ जाता है वह विचार करता है कि बुराई नहीं करनी चाहिए, उसके लिए मन को वश करने की कोशिश करता है उसने मान लिया कि मन वश कर लिया वह पवित्र आत्मा बुरे कर्म न करने की कोशिश करता है परंतु ब्रह्म साधना से मन काबू नहीं हो सकता। जैसे :- श्री नारद जी ने कई वर्षों तक जंगल में जाकर (कर्म सन्यास लेकर) साधना की तथा मान लिया कि अब मैंने मन व ईन्द्रियों पर काबू पा लिया है।

भावार्थ यह है कि कई श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि मेरी भक्ति कर, मुझे ही प्राप्त होगा। अपनी स्थिति बताई है कि पुनरावर्ती यानि जन्म-मरण तेरा और मेरा सदा बना रहेगा। गीता ज्ञान दाता ने स्पष्ट किया है कि यदि तत् ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) की भक्ति करेगा तो उसी को प्राप्त होगा। फिर कभी जन्म-मत्यु को प्राप्त नहीं होगा। उस परमेश्वर की भक्ति का ज्ञान तत्वदर्शी संतों से जानने को कहा है। वह तत्वज्ञान वेदों में व गीता में संपूर्ण नहीं है। जिस कारण से वेदों अनुसार साधना करने वाले चाहकर भी विकार रहित नहीं हुए। उदाहरण के लिए :-

।। नारद जी की कहानी।।

एक दिन नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा को कहा कि पिता जी मैंने वर्षों तक घोर साधना करके मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब योग युक्त हो गया हूँ। तब ब्रह्मा ने कहा यह बात अपने मन में रखना। किसी को मत कहना, विशेष कर अपने चाचा विष्णु जी को तो बिल्कुल न बताना।

नारद जी ने सोचा पिता जी मेरी उपलब्धि पर विश्वास नहीं करते कि मैं पूर्ण तरह विकार रहित हो चुका हूँ। नारद जी एक दिन चलते-2 विष्णु लोक में पहुँच गए। विष्णु जी ने पूछा ऋषिवर कई वर्षों बाद दर्शन दिए, दूज का चाँद बन गए। कुशल मंगल तो है? तब नारद जी ने बताया कि भगवन! मैं वर्षों तक जंगल में (कर्म सन्यास लेकर) साधना करके आया हूँ। मैंने अपने मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब मैं इनके वश नहीं रहा। इस पर विष्णु जी ने कहा बहुत अच्छा किया। ऋषियों का यह प्रथम कार्य होता है कि अपने मन व इन्द्रियों को वश करें। काल (ज्योति निरंजन) की प्रेरणा वश होकर भगवान विष्णु को ख्याल आया कि इसे अभिमान हो गया है (काल भगवान को चिंता बनी रहती है कि कहीं ये ऋषि लोग साधना करके उत्पादन कम न कर दें। काल भगवान दोनों तरफ खेलता है। एक तरफ तो नारद जी को अभिमान वश विष्णु जी के पास भेजा। फिर स्वयं विष्णु को वही काल प्रेरणा देता है) इसका मान भंग किया जाए तथा फिर योजना बनवाई। (यह सब काल ज्योति निरंजन-महाविष्णु खेल खेलता है।) विष्णु जी ने माया से एक सुन्दर नगर बनवाया। उसमें राजा की लड़की का स्वयंवर रचा। नारद जी विष्णु जी से विदा ले कर चले जा रहे थे। उस नगरी में विशेष चहल-पहल देखी। फिर पूछा कि आज इस नगरी में इतनी रौनक (चहल-पहल) कैसे है? पता चला कि यहाँ के राजा की लड़की अपना मन पसंद वर वरेगी। दूर-दूर से युवराज (नवजवान राजा) आए हैं। लड़की, क्या बात है? मानो स्वर्ग से परी उतर आई हो। पथ्वी पर ऐसी लड़की नहीं होगी। जो इसको पाएगा भाग्यशाली होगा।

उसी समय विवाह के गीतों से व काल प्रेरणा से कामदेव जाग उठा। (भूभल में आग, राख

में दबी हुई अग्नि को जब छेड़ा जाता है वह अत्यधिक धधकता हुआ अंगारा होता है) ठीक उसी प्रकार कामदेव (सैक्स) इतना प्रबल हुआ कि नारद जी ने ज्ञान हीन होकर केवल पत्नी प्राप्ति का यत्न सोचा। विचार किया कि मेरे इस रूप को लड़की पसंद नहीं करेगी। क्यों न विष्णु जी से उनका रूप मांग लूं। लड़की देखते ही पसंद करेगी। एकांत स्थान पर जा कर विष्णु जी को सुमरण किया, उसी समय भगवान विष्णु जी ने प्रकट होकर याद करने का कारण पूछा। नारद ने सर्व विवरण बता कर कहा कि हे भगवन! आजतक इस दास ने आप से कुछ नहीं माँगा है। आज कुछ माँगना चाहता हूँ, मना मत करना। विष्णु जी ने कहा माँगो, ऋषिवर। नारद ने कहा वचन बद्ध हो जाओ, तब माँगू। भगवान बोले माँगो। नारद जी बोले मुझे हरि रूप चाहिए। मैंने विवाह कराना है। इस पर भगवान विष्णु 'तथास्तु' कह कर चले गए। हरि नाम बन्दर का भी होता है। नारद जी का मुख बन्दर का बन गया। ऋषि जी अपने मन में अति प्रसन्न चित्त से स्वयंवर स्थल की ओर चला तथा पहुँच कर आसन पर विराजमान हुआ। लड़की हाथ में वरमाला लिए सर्व राजाओं को ध्यान व अदा से देखती हुई चली आ रही है। वह नारद जी को छोड़ कर आगे चली गई। नारद जी वहां से यह सोचते हुए उठ कर अगली खाली कुर्सी पर जा बैठा कि शायद लड़की ने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया नहीं तो मुझे देखते ही वरमाला डाल देती। लड़की फिर नारद जी को छोड़ कर आगे चली जाती है। नारद जी ने सोचा यह लड़की अंधी तो नहीं है। फिर आगे जाकर खाली कुर्सी (आसन) पर बैठ गया। जब नारद के पास लड़की आई तो नारद जी खड़ा हो गया और सोचा कि अब तो अवश्य ध्यान पड़ेगा। लड़की दो कदम पीछे होकर आगे चल पड़ी। नारद ने सोचा कि क्या कमाल है? इतने में एक राजकुमार ने नारद जी को दर्पण दिखाया। उसमें अपने कुरूप (वानर रूप) को देखकर विष्णु जी को छलिया कहा तथा सामने क्या देखता है कि स्वयं विष्णु जी आकर एक सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं और लड़की उनके गले में वरमाला डाल देती है। तब नारद जी के क्रोध की सीमा न रही तथा शाप दे दिया कि जैसे मैं आज पत्नी के वियोग में तड़फ रहा हूँ ऐसे ही आप भी एक पूरा जीवन पत्नी के वियोग में बिताओगे। जिसके शाप वश विष्णु जी ने श्री रामचन्द्र जी के रूप में राजा दशरथ के यहां जन्म लिया, फिर सीता से विवाह तथा तुरंत ही वनवास, फिर वन से सीता हरण, फिर लड़ाई करके रावण को मार कर सीता जी की अग्नि परीक्षा लेकर अयोध्या आए, फिर एक धोबी के कहने से सीता को घर से निकालना तथा अंत तक सीता व राम का मिलन न होना नारद जी के शाप का परिणाम है।

यहां यह काल स्वयं जीव को विवश करके कर्म करवाता है तथा उसके भोग का भागी उसे ही बनाता है। जैसे श्री विष्णु जी को प्रेरित करके श्री नारद जी को बन्दर का मुख लगाना, फिर उसके शाप का दुःख भोग विष्णु जी को मिला।

भावार्थ :- इस अध्याय 5 श्लोक 3 में शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले कर्मयोगी का विवरण है कि जो श्रद्धालु भक्त चाहे बाल-बच्चों सहित है या रहित है या किसी आश्रम में रहकर सतगुरु व संगत की सेवा में रत है। वह सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है। वास्तव में वही सन्यासी है, वही फिर अन्य शास्त्र विरुद्ध साधकों को पूर्ण निश्चय के साथ सत्य साधना का ज्ञान बताता है।

विशेष :-- अध्याय 5 के श्लोक 4 में ज्ञानयोगी व गहस्थी दोनों की एक ही उपलब्धि बताई है। यदि कोई कहता है कि ज्ञानयोगी श्रेष्ठ या गहस्थी श्रेष्ठ है, वह पण्डित नहीं है। यदि दोनों की भक्ति शास्त्रानुकूल है तथा गुरु मर्यादा में रहते हैं तो दोनों ही सफल हैं। यदि भक्ति शास्त्र विधि अनुकूल नहीं है वह चाहे गहस्थी है या ज्ञानयोगी दोनों ही असफल हैं। स्वयं भगवान भी कह रहे हैं

कि शास्त्र विधि रहित साधक कर्म सन्यासियों से कर्म योगी (गहस्थी) उत्तम है। चूंकि कर्म सन्यास में त्याग का अभिमान होना स्वाभाविक है जो परमात्मा प्राप्ति में पूर्ण रूप से बाधक है। अध्याय 5 के श्लोक 5 में कहा है कि ज्ञान योगी तथा कर्म योगी एक ही स्थान प्राप्त करते हैं। जिनकी साधना यदि शास्त्रानुकूल है और जो कोई ऐसा जानता है उसे सही ज्ञान है।

विशेष :- उपरोक्त अध्याय 5 श्लोक 4-5 का भावार्थ है कि कोई तो कहता है कि जिसको ज्ञान हो गया है, वह शादी नहीं करवाता तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहता है और वही पार हो सकता है, वह चाहे घर रहे, चाहे किसी आश्रम में रहे। कारण वह व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करके अन्य जिज्ञासुओं को अच्छी प्रकार उदाहरण देकर समझाने लग जाता है। तो भोली आत्माऐं समझती हैं कि यह तो बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया है। यह तो पार है, हमारा गहस्थियों का नम्बर कहाँ है? कुछ एक कहते हैं कि बाल-बच्चों में रहता हुआ ही कल्याण को प्राप्त होता है। कारण गहस्थ व्यक्ति दान-धर्म करता है, इसलिए श्रेष्ठ है। इसलिए कहा है कि वे तो दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले बच्चे हैं, उन्हें विद्वान न समझो। वास्तविक ज्ञान तो पूर्ण संत जो तत्वदर्शी है, वही बताता है कि शास्त्र विधि अनुसार साधना गुरु मर्यादा में रहकर करने वाले उपरोक्त दोनों ही प्रकार के साधक एक जैसी ही प्राप्ति करते हैं। जो साधक इस व्याख्या को समझ जाएगा वह किसी की बातों से विचलित नहीं होता। ब्रह्मचारी रहकर साधना करने वाला भक्त जो अन्य को ज्ञान बताता है, फिर उसकी कोई प्रशंसा कर रहा है कि बड़ा ज्ञानी है, क्या कहने, परन्तु तत्वज्ञान से परिचित गहस्थी व ब्रह्मचारी जानता है कि ज्ञान तो सतगुरु का बताया हुआ है, ज्ञान से नहीं, नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से मुक्ति होगी। इसी प्रकार जो गहस्थी है वह भी जानता है कि यह भक्त जी भले ही चार श्लोक व वाणी सीखे हुए है तथा अन्य इसके व्यर्थ प्रशंसक बने हैं, ये दोनों ही मूर्ख हैं। मुक्ति तो नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से होगी, नहीं तो दोनों ही पाप के भागी व भक्तिहीन हो जायेंगे। ऐसा जो समझ चुका है वह चाहे ब्रह्मचारी है या गहस्थी दोनों ही वास्तविकता को जानते हैं। उसी वास्तविक ज्ञान को जानकर साधना करने वाले के विषय में निम्न मंत्रों में वर्णन किया है।

विशेष :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने जो अनुवाद गीता अध्याय 5 श्लोक 4 में लिखा है कि सन्यास और कर्मयोग दोनों द्वारा एक ही फल मिलता है यह गीता अध्याय 5 श्लोक 6 के आधार से गलत सिद्ध होता है जिस में लिखा है कि ''सन्यासः अयोगतः तु दुःखम् आप्तुम्'' शब्दार्थ है कि सन्यास मार्ग तो शास्त्रविरूद्ध साधना होने से दुःख का हेतु है। इसलिए योगयुक्त मुनि कर्मयोगी ब्रह्म निचिरेण अधिगच्छति। शब्दार्थ है शास्त्र अनुकूल साधक कर्मयोगी अविलम्ब परमात्मा को प्राप्त होता है। इस अध्याय 5 श्लोक 6 के अन्दर सर्व संशय निवारण हो गए कि गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अनुवाद यथोचित नहीं किया। इस के अतिरिक्त अध्याय 5 श्लोक 2 में भी स्पष्ट किया है कि सन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है। इस कारण से भी अध्याय 5 श्लोक 4 का अनुवाद गलत किया है। गीता अध्याय 5 श्लोक 5 में सांख्ययोग का अर्थ तत्वज्ञान आधार से साधना करना है न कि सन्यास मार्ग से इसलिए मेरे द्वारा (रामपाल दास द्वारा) किया गया अनुवाद श्रेष्ठ है।

गीता अध्याय 5 श्लोक 6 का भावार्थ है कि जो सन्यास मार्ग से शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे चाहे ब्रह्म की साधना करते हैं, चाहे निम्न देवताओं की वे तो दुःख ही प्राप्त करते हैं। सत्य साधक कर्मयोगी शीघ्र परमात्मा प्राप्त करते हैं।

''कर्म सन्यासी को त्याग का अभिमान हो जाता है''

गीता जी अध्याय 5 श्लोक 7 में स्पष्ट किया है कि उपरोक्त दोनों प्रकार के सन्यासियों (कर्मसन्यास वाले) को अपने त्याग व साधना का अभिमान हुए बिना नहीं रहता। अभिमान भगवान के मार्ग में पूरा बाधक है अर्थात् अभिमानी व्यक्ति की सर्व साधना पूजा निष्फल हो जाती है, परमात्मा प्राप्ति नहीं होती। गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 2 में कहा है कि कर्मसन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

प्रमाण : ध्रुव, प्रहलाद, राजा अम्बरीष, राजा जनक शास्त्र विधि रहित गहस्थी कर्मयोगी थे, श्री नानक जी, संत रविदास, संत गरीबदास साहेब जी शास्त्र अनुकूल साधना करने वाले गहस्थी (कर्मयोगी) थे, कर्मयोगी में अभिमान नहीं हो पाता है। वह अपने अशुभ से डरता रहता है और संतों का आदर करता है।

प्रमाण नं. 1 :- सुखदेव ऋषि की कथा

सुखदेव ऋषि कर्म सन्यास लेकर साधना करता था। पिछले भजन के प्रताप से उसमें आकाश में उड़ जाने की सिद्धि भी थी, जिससे उसमें मान बहुत हो गया था। अपने समान साधक (योगी) किसी को नहीं मानता था। गहस्थियों को हेय समझता था और उनके द्वारा की जा रही साधना को गलत तथा मुक्ति न मिलने वाली मानता था। चूंकि आकाश में उड़ जाने की सिद्धि प्राप्त करके यह मान लिया था कि मेरे जैसी उपलब्धि किसी को नहीं है। मैं सबसे श्रेष्ठ योगी हूँ। सर्व देवगण (इन्द्र लोक के) उन्हें पहुँचा हुआ ऋषि मान कर विशेष आदर करते थे। यहाँ तक कि एक बार सुखदेव के पास एक सुन्दर उर्वशी आई। तब सुखदेव ने उसे छुआ तक नहीं। वह अपसरा हार कर चली गई थी। इससे ऋषि सुखदेव को अभिमान हो जाना स्वाभाविक था। वह तीनों लोकों में उड़ कर चला जाता था। इसी विषय में सन्त गरीबदास जी महाराज ने कहा है :-

गोरख से ज्ञानी घने, सुखदेव जती जिहान। सीता सी बहुत भार्या, सन्त दूर अस्थान।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी सर्व प्राणियों के उत्पत्तिकर्ता हैं। इसलिए सर्व के पिता तथा माता, भाई, सखा (मित्र) रूप में सच्चे हितैषी हैं। श्री गोरखनाथ जी से ज्ञान गोष्ठी करके यथार्थ अध्यात्म ज्ञान कबीर जी ने बताया था। उस ज्ञान से श्री गोरखनाथ जी ने निनानवें (99) करोड़ राजाओं को भक्ति प्रेरणा करके सन्यासी बनाया था। परंतु पूर्ण मोक्ष मार्ग गोरखनाथ जी के पास नहीं था। जिस कारण से उनका पूर्ण मोक्ष नहीं हुआ था। उस समय वे पूर्ण ज्ञानी प्रसिद्ध हो गए थे, परंतु संत गति से वंचित रहे। श्री सुखदेव (शुकदेव) जी पूर्ण रूप से जति (ब्रह्मचारी जो किसी स्त्री पर आकर्षित न हो) थे। राजा जनक की परीक्षा में भी सफल रहे थे। जिस समय शुकदेव जी के पास रात्रि में युवती गई। पलंग पर शुकदेव के पैरों से सटकर बैठ गई। शुकदेव जी उठ बैठे। लड़की और निकट आई तो पलंग छोड़कर खड़े हो गए तथा बहन-माता कह कक्ष से बाहर कर दिया। परंतु यथार्थ भक्ति मार्ग न होने से संत गति से वंचित थे। विश्व में प्रसिद्ध है कि श्री रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता जी ने अपने सती धर्म को सुरक्षित रखने के लिए लंका के राजा रावण की अनेकों यातनाऐं सहन की। टस से मस नहीं हुई। श्री रामचन्द्र जी द्वारा ली गई अग्नि परीक्षा में भी सफल रही। परंतु सत्य भक्ति नहीं थी। श्री सीता जी जैसी अन्य भी बहुत सारी पत्नियाँ मिल जाएंगी। उपरोक्त सर्व प्रकार की महिमायुक्त अनेकों स्त्री-पुरूष मिल जाएंगे, परंतु पूर्ण संत मिलना दूर की बात है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में गीता ज्ञान कहने वाले ने कहा है कि सर्व मानव अन्य देवी-देवताओं की भक्ति करते हैं। मेरी भक्ति तो बहुत-बहुत जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् कोई ज्ञानी पुरूष करता है। परंतु यह बताने वाला संत कठिनता से प्राप्त होता है (सुदुर्लभ है।) कि वासुदेव यानि जिस परमेश्वर की सत्ता सर्व ब्रह्मण्डों पर है। वही कुल का मालिक है। वही सबका उत्पत्तिकर्ता है। वही सबका पालनकर्ता है। वही पूर्ण मोक्ष दायक है। वही पूजा के योग्य है यानि वही परमेश्वर (सर्वम्) सब कुछ है। सूक्ष्मवेद में भी कहा है कि :-

कोट्यों मध्य कोई नहीं राय झूमकरा। अरबों में कोई गर्क सुनो राय झूमकरा।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी ने पंजाब प्रान्त के गाँव बसीयर (निकट लुधियाना शहर) से आए रामराय के पूछने पर बताया था कि पूर्ण संत करोड़ों में तो मिलेगा नहीं, अरबों में कोई एक मिलेगा जो (गरक) सर्व ज्ञान सम्पन्न तथा यथार्थ भक्ति साधना के ज्ञान को जानने वाला है।

पाठकों से निवेदन :- वर्तमान में विश्व की जनसँख्या लगभग सात अरब है। यह दास (रामपाल दास) एकमात्र सर्व ज्ञान तथा सत्य भक्ति सम्पन्न संत है, आप मानो चाहे मत मानो। सुखदेव जी की शेष कथा :-

एक दिन सुखदेव जी श्री विष्णु जी के लोक में पहुँच गए तथा वहां के स्वर्ग (रेस्टोरेंट) में रहना चाहा। इस पर पहरेदारों ने पूछा आपके पूज्य गुरुदेव कौन हैं? कृप्या उनका शुभ नाम बताईए ताकि हम अपनी सूची (जिसमें उस समय के मान्यता प्राप्त गुरुओं के नाम लिखे हैं) में उनका नाम देखेंगें कि वे उपदेश देने के अधिकारी भी हैं या नहीं। इस पर ऋषि जी ने कहा कि मैंने कोई गुरु नहीं बनाया और न ही आवश्यकता समझी। चूंकी जो गुरु बनाए बैठे हैं वे दो फुट भी जमीन से हिल नहीं सकते और मैं यहाँ तक पहुँच आया हूँ। गुरु की क्या आवश्यकता है? सुखदेव जी कहते जा रहे हैं। इस पर स्वर्ग के पहरेदारों ने बताया कि हम आपको अन्दर नहीं जाने देंगे। यह भगवान विष्णु का आदेश है कि गुरु विहीन प्राणी स्वर्ग में नहीं रह सकता। यह सुन कर ऋषि सुखदेव ने सोचा कि यह नादान प्राणी (पहरेदार) मेरी महिमा से परिचित नहीं है। कहा कि मुझे भगवान विष्णु से मिलाओ, नहीं तो मैं वापिस नहीं जाऊँगा। एक पारखद (स्वर्ग के सेवक) ने भगवान विष्णु को सारा वृतान्त सुनाया। तब भगवान विष्णु अपने महल से बाहर आए और सुखदेव से पूछा ऋषि जी क्या करने आए? इस पर सुखदेव ऋषि ने प्रणाम करके कहा स्वामी मैं स्वर्ग में रहने की इच्छा से आया हूँ। मुझे आपके अनुचर प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। भगवान विष्णु सर्व जानते हुए भी पूछते हैं क्यों सेवकों (पारखदों) क्या बात है? ऋषि जी को किस लिए रोका है? इस पर सेवक (पारखद) बोले परवरदिगार! ऋषि गुरु विहीन हैं। इन्होंने कोई गुरु नहीं बना रखा। आपकी आज्ञा है कि बिना गुरु वाले साधक को स्वर्ग में प्रवेश मना है, रहना तो बहुत दूर है। पारखद के मुख से यह बात सुनकर श्री विष्णु जी ने प्रश्नात्मक पूछा क्या ऋषि जी आप गुरु विहीन हो? आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा -आपने गुरु नहीं बना रखा? यह सुनकर सुखदेव ने कहा! नहीं। तब विष्णु जी ने कहा आप गुरु बनाओ फिर उनके बताए अनुसार साधना कर व मर्यादावत रह कर फिर अपनी कमाई करके स्वर्ग में आना। तब सुखदेव ने कहा भगवन! पृथ्वी पर मेरे समान कोई संत दिखाई नहीं देता। इस पर भगवान विष्णु जी ने कहा राजा जनक से नाम लो।

कबीर, गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हरि की सेव। कह कबीर बैकुण्ठ से फेर दिया सुखदेव।।

भावार्थ :- कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि सुखदेव जी को माता के गर्भ में ही ज्ञान हो गया था। बारह (12) वर्ष तक माता के गर्भ में रहा। जिस कारण से गर्भ योगेश्वर कहा जाता था।

वह भी गुरू से दीक्षा लिए बिना साधना किया करता था। पूर्व जन्म की सिद्धि-शक्ति से आकाश में उड़ जाता था। एक बार श्री विष्णु जी के लोक में बने स्वर्ग स्थान पर गया। उसको बैकुण्ठ में प्रवेश नहीं करने दिया गया। इसी कारण से श्री विष्णु जी ने उसे स्वर्ग से लौटा दिया और कहा कि वर्तमान में राजा जनक मेरा परम संत है। वह मेरी दीक्षा का अधिकारी है। उससे दीक्षा लेकर गुरू बनाकर साधना करके फिर आना।

विष्णु जी के मुख से यह बात सुन कर स्वर्ग (इन्द्र लोक) में आया। उस दिन सुखदेव जी का चेहरा उतरा हुआ था। पहले जैसी रोनक (तेज) नहीं थी। सुखदेव जी के चेहरे पर निराशाजनक चिन्ह देखकर स्वर्ग में रहने वाले देवों ने पूछा क्या कारण है ऋषि जी? आज आपका चेहरा उतरा हुआ है। तब सुखदेव जी ने अपनी सारी कहानी सुनाई कि मैं विष्णु लोक में गया था तथा वहां स्वर्ग में रहने की प्रार्थना की तो भगवान ने मना कर दिया। यह सुनकर सर्व देवगण कहने लगे भगवान विष्णु ऐसे तो नहीं करते। वे तो ऋषियों के देखते ही हर्षित होते हैं तथा सीने से लगाते हैं सही कारण बताओ क्या गलती बनी है? सुखदेव ने कहा भगवान बोले आपने गुरु नहीं बना रखा। पहले गुरु बनाईए, फिर गुरु द्वारा प्राप्त उस नाम की कमाई करके यहाँ आ सकते हैं। सर्व उपस्थित देव एक स्वर से आश्चर्य जताते हुए बोले क्या? आपका कोई गुरु नहीं है? इस पर सुखदेव कुछ नहीं बोला। देवों ने कहा यह तो आप की सरा-सर नादानगी है। हम तो आपको एक अच्छा पहुँचा हुआ संत मानते थे। आप तो नादानों के भी नादान निकले। आप अति शीघ्र गुरु बनाएँ, नहीं तो चौरासी लाख जूनियाँ तैयार हैं। यह पिछले तप पुण्यों की शक्ति (सिद्धि) आपके पास है जिसके आधार पर आप आकाश में उड़ जाते हो। यह बैटरी जिस दिन डिस्चार्ज हो जाएगी उस दिन आपकी पिछली सिद्धि शक्ति समाप्त हो जाएगी। चूंकि आपकी नई कमाई (साधना) शास्त्र विरूद्ध होने से नहीं बन पा रही है। इसलिए आप नरक के भागी होवोगे और उसके बाद लख चौरासी योनियों में कष्ट पर कष्ट पावोगे। ये सब नेक सलाह देवों के मुखसे सुनकर सुखदेव जी बोले कि मेरे जैसा बाल ब्रह्मचारी, वैरागी संत पथ्वी पर नजर नहीं आता है जिससे उपदेश लेने से आत्म कल्याण हो सके तथा विष्णु जी ने सलाह दी है कि राजा जनक से नाम (उपदेश मन्त्र) ले लो। सुखदेव ने कहा - हे देवताओ! आप ही बताओ उस गहस्थी व्यक्ति को जिसने दस हजार रानियाँ रखी हैं कैसे प्रणाम करूँ? मैं बाल ब्रह्मचारी तथा स्त्री का मुख भी नहीं देखा है। महाराज गरीबदास जी छुड़ानी वाले की वाणी से :- सुखदेव बोला -

जनक विदेही राजा भाई, कैसे शीश नवाऊँ जाई। सुखदेव बोले शब्द विवेका, हमने स्त्री का मुख नहीं देखा।।

भावार्थ :- ऋषि सुखदेव जी तत्वज्ञान के अभाव से अपने को इस बात से सर्वश्रेष्ठ मान रहे थे कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। ब्राह्मण कुल में जन्मा हूँ। आकाश में उड़ने की सिद्धियुक्त हूँ। राजा जनक क्षत्रीय कुल में जन्मा है जो ब्राह्मण कुल से निम्न है। राजा जनक ग्रहस्थी यानि विवाहित है। स्त्री भोगता है। मैंने आज तक स्त्री का मुख भी नहीं देखा। ऐसे राजा जनक को गुरू बनाने के लिए कैसे सिर झुकाऊँ। मेरी प्रतिष्ठा को ठेस लगेगी। उसकी ये बातें सुनकर सर्व उपस्थित देवों ने कहा सुखदेव जब भगवान ने स्वयं आपको राजा जनक को गुरु बनाने को कहा है तो फिर विलम्ब किसलिए कर रहे हो। जीवों के पालनकर्त्ता, दुःखी जीवों के दुःख में दुःखी होने वाले भगवान का कोई स्वार्थ थोड़ा ही है। जल्दी जा कर राजा जनक से नाम ले लो। आपका कल्याण हो जाएगा। इसके बाद ऋषि सुखदेव जी अपने पिता श्री वेदव्यास जी के पास गए तथा सर्व बीती बात कह सुनाई। तब शास्त्रों के ज्ञाता श्री भगवान वेदव्यास जी ने कहा, हे बेटा! आपने गुरु नहीं बना रखा

है। यह आपकी महान गलती है। मैं तो बहुत खुश था कि मेरा पुत्र एक होनहार भगवत् प्रेमी है तथा मेरा नाम ऊँचा करेगा और अपना कल्याण करेगा। आपने तो शास्त्र विहीन योग साधना करके नरक व चौरासी लाख योनियों में जाने की पूरी तैयारी कर रखी है। जाओ जैसे भगवान ने सलाह दी है वैसे ही अति शीघ्र करो। राजा जनक को गुरु धारण करके स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी बनो। कबीर साहेब (पूर्ण ब्रह्म) कहते हैं कि :-

कबीर, गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान। गुरु बिन दोनों निष्फल हैं, पूछो वेद पुरान।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी की वाणी यानि सूक्ष्मवेद में कहा है कि गुरू धारण किए बिना चाहे राम नाम की माला घुमाते रहो, चाहे दान करते रहो। ये दोनों ही व्यर्थ हैं।

गुरु ग्रन्थ साहिब के पष्ठ नं. 946 (सीरी राग महला पहला) से सहाभार :-

बिन सतगुरु सेवें जोग न होई। बिन सतगुरु भेटें मुक्ति न कोई।।
बिन सतगुरु भेटे नाम पाईया न जाई। बिन सतगुरु भेटे महा दुःख पाई।।
बिन सतगुरु भेटे महा गरब गुबारी। नानक बिन गुरु मुआ जन्म हारि।।70।।

इस 70 नं. पौड़ी में स्पष्ट किया है कि बिना गुरु के कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती तथा गुरु के बिना नाम (सतनाम) प्राप्त नहीं हो सकता और जीव का अभिमान समाप्त नहीं हो सकता। नानक जी कहते हैं कि बिना गुरु के यह प्राणी अपना जीवन हार जाता है अर्थात् व्यर्थ समाप्त कर जाता है। फिर सुखदेव जी अपनी मनमुखी समझ को त्याग कर नाम लेने की प्रबल इच्छा से राजा जनक के पास गए।

''गरीब, माना वचन कल्पना छाडी, सुखदेव लगी लगन जद गाढी''

भावार्थ :- ऋषि सुखदेव ने अन्य ऋषि के वचनों को मान लिया तथा उसको राजा जनक को गुरू धारण करने की दंढ़ लगन लगी।

जब ऋषि सुखदेव राजा जनक के पास नाम लेने के उद्देश्य से पहुँचे तो उस समय राजा जनक स्नान करने की तैयारी में था। राजा जनक ने सेवकों से कहा कि हमारा अहोभाग्य है कि हमारे घर पर एक बहुत पहुँचे हुए महापुरुष योगी बाल ब्रह्मचारी महात्मा सुखदेव जी आए हैं। ऊँचा आसन स्वच्छ वस्त्र बिछा कर लगाओ। अनुचरों ने ऐसा ही किया। राजा जनक ने सुखदेव से कहा विराजो ऋषिवर! सुखदेव जी ने कहा कि मैं नीचे बैठूंगा। मैं आपको गुरु बनाने आया हूँ। मेरा उद्धार करो संत जी। सुखदेव के मुख से यह बात सुनकर राजा जनक ने कहा ऋषिवर क्यों उपहास करते हो? आप एक स्वयं सिद्ध पुरुष मुझ एक भिखारी से नाम दान की कह रहे हो। इस बात को सुनकर सुखदेव जी ने अपनी आप बीती बताई तथा कहा कि भगवान विष्णु जी ने भी आपको गुरु बनाने के लिए मुझे आदेश दिया है।

राजा जनक ने कहा सुखदेव जी मैं स्नान कर लेता हूँ। फिर आपको उपदेश दूँगा। राजा जनक ने अपनी पटरानी (मुख्य स्त्री) को कहा कि मेरे नहाने का पानी गर्म करो। रानी ने नौकरों से कह कर वहीं पर ईटों का एक बड़ा चूल्हा बनवाया तथा उस पर बड़ा पतीला रखकर पानी को गर्म करने के लिए लकड़ी जला दी। जब पानी उबलने लगा तो स्नान करने के लिए एक पटड़ा (लकड़ी की बड़ी चौकी) उबलते हुए पतीले के पास ही डाल दिया। उबलते हुए पानी के पतीले से लोटा भर कर राजा जनक के सिर पर डालकर पटरानी स्वयं अपने हाथों से स्नान कराने लगी। यह देख कर सुखदेव जी ने आश्चर्य हुआ कि इतने उबलते हुए पानी से राजा व रानी का शरीर जलता नहीं? राजा ने कहा आओ व्यास के पुत्र! बाल ब्रह्मचारी! जो पानी मेरे स्नान करने के बाद नीचे नाली में जा रहा है उसमें ऊँगली डालकर दिखा दे। यदि आपकी ऊँगली नहीं जली तो आप जती

हो, नहीं तो तेरी झूठी योग साधना है। सुखदेव ने कहा मेरा तो सारा शरीर जल जाएगा। मेरे बस की बात नहीं है।

तब राजा ने हँसकर हथेली बजाई (तारी दी) कि मुझे एक नारी स्नान करवा रही है यह नहीं जल रही है। ऋषि सुखदेव! तेरे से अच्छी साधना तो रानी की है जो घर में रहकर भक्ति करती है। तब सुखदेव का भ्रम मिटा और राजा जनक में पूरी श्रद्धा हो गई। श्री व्यास जी के पुत्र सुख देव जी ने विवाह किया तथा भक्ति की राजा जनक जी को गुरू धारण किया। यदि गुरु में पूरी आस्था नहीं होगी तो जीव भक्ति पर नहीं लग सकता। गुरु को भगवान तुल्य मानना चाहिए। तब सुखदेव जी का कल्याण हुआ और स्वर्ग प्राप्ति हुई।

प्रमाण के लिए आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज की वाणी

(सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 399 से 403 तक) :--

सुरनर मुनि गण गंधर्व ज्ञानी, सबसें ऊंचा है अभिमानी।
अधर विमान चलै मन रूपा, गर्भ योगेश्वर ज्ञान स्वरूपा।।
इन्द्रिय पांच पचीसों साधी, गर्भ योगेश्वर जोगी वादी।।
गरीब, बादी जोगी बाद करि, बिचर्या तीनों लोक।
सतगुरु जनक विदेही बिन, पावत नांही मोक्ष।।24।।
शुकदेव के तो मान घनेरा, सुरपति लुब्ध काम दल घेरा।
शुकदेव कल्प वक्षकी छांहि, जनक विदेही करैं गुरु नांहि।।
जनक बडा अक शुकदेव जोगी, दश सहंस रानी रसभोगी।
शुकदेव बोले ज्ञान बिवेका, हम स्त्री का मुख नहीं देखा।।
हम हैं गर्भ योनि सें न्यारा, ज्ञान खड्ग इन्द्रिय प्रहारा।
कैसे शीश नमाऊं जाई, जनक विदेही राजा भाई।।
पुंडरीक नारदमुनि व्यासा, ब्रह्मा विष्णु महेश उपासा।
आसन आदर अति अधिकारा, शुकदेव सकल मांहि शिरदारा।।
चौदा भुवन फिरे पलमांहि, शुकदेव सरबर दूजा नांहि।
सुर तेतीसों सहंस अठासी, शुकदेवकी सब करैं खवासी।।
वसिष्ठ विश्वामित्र ज्ञानी, कागभुसंड कहो प्रवानी।।
गरीब, कागभुशुण्डी ध्यान धरि, भये जू पद प्रवान।
आधीनी अधिकार बिन, शुकदवे मूढ अज्ञान।।25।।
सनक सनंदन नारद भाई, शुकदेव ज्ञान बहुत समझाई।
नारद कूं झीवरगुरु कीना, कह्या ज्ञानमें हो गया हीना।।
बोले ब्रह्मा विष्णु महेशा, शुकदेव नांही ज्ञान प्रवेशा।
चीन्ह्या नहीं पुरुष अविनाशी, शुकदेव गर्भ योनिके वासी।।
जनक विदेह करो गुरु सोई, गर्भ योनि सें छूटो तोही।
जनक विदेह गर्भ से न्यारा, शुकदेव गर्भ योनि अवतारा।।
गर्भ योनि है मान बड़ाई, सो शुकदेव तुम मांहि बसाई।
जनक विदेही करौ दीदारा, तौ तू गर्भ योनि सैं न्यारा।।
पिंड ब्रह्मण्ड दोऊ हैं योनी, इच्छा बीज न शुकदेव भूंनी।
चौदा भवन फिरे पल मांही, उड्या फिरौ पंखी की नांई।।
गरीब, राजा जोगी जनक है, तीन लोक तत्त सार।

मिहर करैं गुरुदेव जदि, शुकदेव उतरैं पार।।26।।
मान्या बचन कल्पना छाडी, शुकदेव लगी लगनि जदि गाढी।
शुकदेव छाडी मान बडाई, जनक विदेह किया गुरु जाई।।
बोलै जनक विदेही राजा, इन्द्रिय दमन करी किस काजा।
ब्रह्मानंद पद मिल्या न तोकूं, ऐसें दर्शत हैं सब मोकूं।।
शूकदेव सुनौं व्यास के पूता, इन्द्रिय लार लगी संजूता।
मन गुण इन्द्रिय कर्म न जानैं, व्यास पुत्र तू ज्ञान दिवानें।।
इन्द्रिय कर्म लगावौ किसकै, जिह्वा लेप नहीं मधु रसकैं।
नैंन पटलमें ईसर भागा, देखे सकल रूप अनरागा।।
तुम खेलत कुल बनज गियाना, ईश्वर पद का नांहीं ध्याना।
जैसें चंदन सर्प लिपटाई, शीतल तन भया विष नहीं जाई।।
ऐसा जोग कमाया पूता, कहा हुवा जो इन्द्रिय धूता।
सीप मांहि मोती मुक्ताहल, बाहर खारा नीर हलाहल।।
कुरंग मतंग पतंग भंग संगा, इन्द्रिय एक ठग्यो तिस अंगा।
तुमरे संग पांचौं प्रकाशा, जोग जुगति की झूठी आशा।।
हाड चाम तन खाल खलीती, याह शुकदेव तुम माया जीती।
भग सैं बिंदुबिंदुसैंदेही, चीन्ह्या नाहींशब्द सनेही।।
गरीब, दीनदुनी सुमरण करें, जपैं कालका नाम।
काल काल भक्षण करे, लख्या न अविगत धाम।।30।।
अगर फुलेल हमांम चढाया, राजा जनक न्हानकूं धाया।
दस सहंसमें जो पटरानी, करे खवासी जलहर पानी।।
जरे अंगीठ बरे तिस नीचे, राजा रानी परिमल सींचे।
आवो गर्भ जोगेश्वर जोगी, हमराजा इन्द्रिय रस भोगी।।
जो तुमरी देह अग्नि जरि जाई, तो झूठा शुकदेव जोग कमाई।
मलागिर रानी तन लावै, अगर फुलेल हमाम न्हवावै।।
राजा राणी शब्द स्वरूपा, शुकदेव परे अंध गहकूपा।
जब फुलेल लगावे अंगरी, हमरी जरिहै काया सगरी।।
राजा बिहंसि दई जदि तारी, हमों अस्नान करावे नारी।
करि अस्नान तखत पर आये, शुकदेव परम ज्ञान गौहराये।।
अकल अचिंत शब्द निर्मोही, शुकदेव दरशभर्म सब खोई।।
कबीर, राजा जनक गुरू किया, किन्हीं हरि की सेव।
कहैं कबीर बैकुण्ठ में, चले गये सुखदेव।।

कबीर पंथी शब्दावली (पष्ठ नं. 440.441) से सहाभार

सतगुरु बोलै अमंत वानी। गुरु विन मुक्ति नहीं रे प्रानी।।
गुरु हैं आदि अंतके दाता। गुरु है मुक्ति पदारथ भ्राता।।
गुरु गंगा काशाी अस्थाना। चारि वेद गुरु गमते जाना।।
गुरु है सुरसरि निर्मल धारा। बिन गुरु घट नाहीं हो उजियारा।।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आवे। गुरुकी दया घर बैठहिं पावे।।
गुरु कहै सोई पुन करिये। मातु पिता दोउ कुल तरिये।।
गुरु पारस परसे नर लोई। लोहते कंचन होय सोई।।
शुकदेव के गुरु जनक बिदेही। वो भी गुरुके परम सनेही।।

नारद गुरु प्रहलाद पठाये। भक्ति हेतु जिन दर्शन पाये।।
कागभुसंड जोगजीत गुरु कीन्हा। अगम निगम सबही कहि दीन्हा।।
ब्रह्मा गुरु कविरग्निको कीन्हा। होम यज्ञ जिन आज्ञा दीन्हा।।
वशिष्ठ गुरु किया रघुनाथा। पाऐ दरस तब भये सनाथा।।
कष्ण गये दुर्वासा शरना। पाइ भक्ति तब तारन तरना।।
नारद दिच्छा झिमर सो पायो। चौरासी सों तुरंत छुड़ायो।।
गुरु कहै सोई है साँचा। बिन परिचय सेवक है काँचा।।
कहै कवीर गुरु आपु अकेला। दश औतार गुरुका चेला।।
साखी – राम कष्ण ते को बडा, उनहू भी गुरु कीन।
तीन लोकके वै धनी, गुरु आगे आधीन।।

❖ इससे यह स्पष्ट हुआ कि शास्त्रविरूद्ध साधना निष्फल तथा धोखा है।

अध्याय 16 का श्लोक 23

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति) प्राप्त होता है (न) न (पराम्) परम (गतिम्) गतिको और (न) न (सुखम्) सुखको ही।।23।।

अध्याय 16 का श्लोक 24

अनुवाद : (तस्मात्) इससे (ते) तेरे लिये (इह) इस (कार्याकार्यव्यवस्थितौ) कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें (शास्त्रम्) शास्त्र ही (प्रमाणम्) प्रमाण है (एवम्) ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर तू (शास्त्रविधानोक्तम्) शास्त्रविधिसे नियत (कर्म) कर्म ही (कर्तुम्) करने (अर्हसि) योग्य है।।24।।

प्रमाण नं. 2 :- राजा अम्ब्रीस कर्मयोगी तथा दुर्वासा ऋषि कर्म सन्यासी थे

श्रीमद्भागवत सुधा सागर (पष्ठ नं. 456, 457) से सहाभार "नोवां स्कन्ध - अध्याय 4"

ब्रह्मा जी ने कहा - जब मेरी दो परार्धकी आयु समाप्त होगी और कालस्वरूप भगवान् अपनी यह सष्टि लीला समेटने लगेंगे और इस जगत्को जलाना चाहेंगे, उस समय उनके भ्रमसंगमात्रसे यह सारा संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायगा।।53।। मैं, शंकरजी, दक्ष-भगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, (उनके भक्तके द्रोहीको बचानेके लिये हम समर्थ नहीं हैं)।।54।।

श्रीमहादेव जी ने कहा - 'दुर्वासा जी! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश, इस ब्रह्मण्ड के समान ही अनेकों ब्रह्मण्ड समय पर पैदा होते और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं - उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते।।56।। मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरी तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर - ये हम सभी भगवान् की माया को नहीं जान सकते, क्योंकि हम उसी माया के घेरे में हैं।।57-58।।

(श्रीमद् भागवत सुधा सागर से लेख समाप्त)

इसमें ब्रह्मा स्वयं कहता है कि यह काल भगवान है जो महाविष्णु है। शंकर जी कह रहे हैं हम सब इसी महाविष्णु (काल) के घेरे में हैं।

नोट :- प्रमाण के लिए देखें श्रीमद्भागवत सुधासागर के नवम् (नौवां) स्कन्ध में अध्याय 4 व 5।

राजा अम्बरीष (राजा नाभाग के पुत्र) भगवान (महाविष्णु-काल-ज्योति निरंजन-ब्रह्म) के बहुत श्रद्धालु भक्त थे तथा श्री विष्णु जी को इष्ट मान कर साधना करते थे। एक समय उनके मन में आया कि भजन कम बनता है, इसलिए कुछ अन्न-जल संयम करूं। जिस कारण मुझे अधिक निन्द्रा

आलस्य न सताए। वह निर्गुण व सर्गुण दोनों रूप से ब्रह्म की उपासना करता था। राजा ने एक नित्य नियम करना चाहा - वेदों में प्रमाण है (गीता जी में भी प्रमाण है) कि बिल्कुल न खाने वाले प्राणी की साधना सफल नहीं होती। जैसे प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाने वाला व्यक्ति एक दिन न खाए तो भूख अधिक सताती है। भजन में ध्यान न लग कर भूख पर ध्यान बना रहता है। अत्यधिक खाना व बिल्कुल न खाना (व्रत रखना) वर्जित है। राजा अम्बरीष प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाते थे। प्रतिदिन एक रोटी कम करनी शुरू कर देते थे। दसवें दिन केवल एक रोटी खाते थे। फिर एकादशी को पानी-पानी प्रयोग किया करता था।

एक दिन ऋषि दुर्वासा जो कर्म सन्यासी थे राजा अम्बरीष के द्वार पर आए। तब राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! खाना खाईए, भोजन तैयार है उस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा कि मैं स्नान ध्यान के लिए गंगा के किनारे जाता हूँ, लौट कर खाना खाऊँगा। जब ऋषि दुर्वासा स्नान ध्यान से निवर्त होकर आए, खाना खाया, फिर राजा से प्रार्थना की कि आप भी खाईए। इस पर राजा अम्बरीष ने कहा आज एकादशी है। मैं भोजन न खा कर केवल जल पान करता हूँ तथा विशेष ब्रह्म ध्यान करता हूँ। इस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा राजन् यह व्रत तो शास्त्र विरूद्ध साधना है। आप मत किया करो तथा निर्गुण मार्ग से भजन-ध्यान की विधि बताई। राजा अम्बरीष ने ऋषि दुर्वासा का अनादर न करके ध्यान पूर्वक सुना तथा सोचा की कौन से दुर्वासा रोज आते हैं। न जाने मेरे अच्छे कर्म उदय हो गये हों जो आज ऐसे महान ऋषि मेरे द्वार पर आए हैं। क्यों नाराज किया, कहा - सही है-सही है। आप ठीक कह रहे हो। परंतु अपने मन से स्वीकार नहीं किया। राजा ने ऋषि के चरण छुए, दण्डवत् प्रणाम किया तथा दक्षिणा देकर विदा किया और कहा ऋषिवर इस दास को सम्भालते रहना। जल्दी ही आने की कप्या करना।

एक दिन ऋषि दुर्वासा जी यह देखने के लिए कि राजा ने मेरी बात पर अमल किया या नहीं, एकादशी वाले दिन राजा अम्बरीष जी के द्वार पर पहुँच गए। राजा को उसी विधि से साधना करते पाया तो क्रोध वश सिद्धि छोड़ी (सुदर्शन चक्र चलाया) तथा आदेश दिया कि इस अभिमानी अम्बरीष का शीश काट दे। 'सुदर्शन चक्र' राजा अम्बरीष के पैर छूकर ऋषि दुर्वासा को मारने को उल्टा चला। ऋषि भय खाय कर भाग लिया। सुमेरू पर्वत पर छुपना चाहा। सुदर्शन चक्र साथ ही रहा। देवराज इन्द्र के पास गया और ब्रह्मा - शिव के पास से भी अपनी रक्षा न होने के बाद विष्णु लोक में भगवान विष्णु के द्वार पर जाकर उनके चरणों में गिरकर सुदर्शन चक्र से अपनी रक्षा की भीख मांगने लगा। उसी समय काल-महाविष्णु जो सर्व जीवों को नचा रहा है जिसने ब्रह्मा-विष्णु-महेश को भी नहीं बख्शा अपने ब्रह्मलोक से आकर त्रिलोकिय विष्णु के शरीर में प्रवेश करके काल ने पूछा - हे ब्राह्मण! क्या गुस्ताखी की है जिसके कारण यह रिएक्सन (प्रतिक्रिया) हुआ? अर्थात् सुदर्शन चक्र आप ही को मारने पर उतारू है। सच्च-2 बताना झूठ मत बोलना। उस समय विष्णु जी की सभा में अठासी हजार ऋषि भी बैठे यह कौतुक देख रहे थे। दुर्वासा की हालत देखकर अठासी हजार ऋषियोंको हंसी आई। दुर्वासा ने सारी कहानी सुनाई कि मैंने राजा अम्बरीष से कहा कि आप निर्गुण साधना करो तथा एकादशी का व्रत मत करो। व्रत कोई लाभ नहीं देता। उसने मेरी बात को महत्व नहीं दिया। तब मैंने चक्र चलाया। यह सुनकर भगवान विष्णु में प्रवेश ब्रह्म (ज्योति निरंजन) बोला कि हे ऋषिवर, राजा व्रत नहीं कर रहा था। वह केवल संयम करके ध्यान लगाता था। वह सर्गुण व निर्गुण दोनों साधना करता है। निर्गुण को अपने मन-2 में करता है। सर्गुण सब दिखाई देती है। सर्गुण उपासना में गुरु पूजा, पाठ, आरती, हवन (ज्योति) आदि आता

है तथा निर्गुण में नाम साधना (अजपा जाप) मानी जाती है। किसी साधक को बलात न कह कर प्यार से समझाना चाहिए। माने उसका भला न माने उसकी इच्छा। नहीं तो परमात्मा अप्रसन्न हो जाते हैं। ऋषि जी आप जाओ और राजा अम्बरीष से क्षमा याचना करो। वे आपको क्षमा करेंगे तो क्षमा है, नहीं तो नहीं। यह बात सुनकर दुर्वासा जी अति भयभीत होकर कहने लगा कि हे भगवन! आपके दरबार में मेरी सुरक्षा नहीं है तो फिर कहाँ जान बचेगी? इस पर विष्णु जी ने कहा आप निःसन्देह राजा अम्बरीष के पास जा कर क्षमा याचना करो। वे दयालु हैं, उनमें भक्त के लक्षण हैं। जल्दी जाईए, देर मत करो। इतना सुनते ही दुर्वासा जी आकाश में उड़कर राजा अम्बरीष के द्वार पर जाकर उनके चरणों को पकड़ कर अपनी गलती की क्षमा याचना करने लगा। राजा अम्बरीष ने चक्र को हाथ से पकड़ कर शांत कर दिया। तब दुर्वासा ऋषि ने कहा - हे राजा! मेरी कमर पर हाथ रख दो ताकि मेरे हृदय में शांति होवे। तब राजा अम्बरीष ने दुर्वासा की कमर पर हाथ रखते हुए कहा कि आपकी करनी आपको हानिकारक हुई। मैंने कुछ नहीं किया। आप तो मेरे लिए अति आदरणीय तथा पूजनीय हो, परंतु ऋषि जी भक्ति के भाव से ही रहना चाहिए। भक्ति के नियमों को भंग करने वाला परमात्मा को बिल्कुल पसंद नहीं है। जैसे बिजली के नंगे तार को हाथ लगाना हानिकारक है। वह विद्युत नियमों के विरूद्ध है। इस नियम को चाहे बिजली महकमें का मुख्य अधिकारी क्यों न हो वह भेद नहीं करती। इस प्रकार क्रोध करना भक्त व संत के लिए हानिकारक है। ऐसा करने से भाव भक्ति समाप्त हो जाती है। सब जीवों को परमात्मा का अंश जानें तथा परेशान न करें।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 8 और 9 का भाव है कि जो भी कर्म व्यक्ति करता है वह यह सोच ले कि मैं कुछ नहीं करता। यह अनुवाद अन्य गीता जी के अनुवादकर्ताओं ने किया है जो गलत है।*

विचार करें :- यदि कोई किसी की हत्या कर दे और कहे कि मैंने कुछ नहीं किया। क्या वह दोष मुक्त है? यह ज्ञान भगवान कष्ण का नहीं ब्रह्म (काल) का है। पहले कर्म करवाएगा, फिर भोग देगा।

अध्याय 5 श्लोक 8 व 9 का भावार्थ है कि तत्वज्ञान युक्त साधक सर्व कर्म करता हुआ ध्यान रखता है कि मैं कोई पाप कर्म तो नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कहा है कि वह ज्ञान आधार से सोच समझकर सर्व कर्म करता है।

अध्याय 5 के श्लोक 10 से 13 में कहा है कि आत्म तत्व में आए साधक अर्थात् जिन्होंने पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हुआ तथा पूर्ण गुरु से नाम ले लिया वह व्यक्ति शुभ कर्म करता है। इसलिए कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता तथा अन्य काल (ब्रह्म) ज्ञान के आधार पर कर्म करते हैं और फिर कर्म फल भोगते हैं।

।। गीता ज्ञान बोलने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा है ।।

गीता के इस अध्याय 5 के श्लोक *14, 15, 16, 19, 20, 24, 25, 26* में गीता का ज्ञान बताने वाला अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा की महिमा बता रहा है :-

।। प्राणी अपने स्वभाव वश चलते हैं।।

गीता अध्याय 5 श्लोक 14, 15, 16 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ने जब सतलोक में सष्टि रची थी उस समय किसी को कोई कर्म आधार बना कर उत्पत्ति नहीं की थी। सत्यलोक में सुन्दर शरीर दिया था जो कभी विनाश नहीं होता। परन्तु प्रभु ने कर्म फल का विधान अवश्य बनाया था।

इसलिए सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करके सुख व दुःख के भोगी होते हैं। जैसे हम सर्व आत्माऐं सत्यलोक में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (सतपुरुष) द्वारा अपने मध्य से शब्द शक्ति से उत्पन्न किए। वहाँ हमें कोई कर्म नहीं करना था तथा सर्व सुख उपलब्ध थे। हम स्वयं अपने स्वभाव वश होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म-काल) पर आसक्त हो कर अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। उसी का परिणाम यह निकला कि अब हम कर्म बन्धन में स्वयं ही बन्ध गए। अब जैसे कर्म करते हैं, उसी का फल निर्धारित नियमानुसार ही प्राप्त कर रहे हैं। शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से पाप क्षमा कर देता है, अन्यथा संस्कार ही बरतता है। अध्याय 5 श्लोक 14-26 तक शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म तथा मर्यादा में रहकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण प्रभु पाप क्षमा कर देता है। इसलिए कर्म करता हुआ ही पूर्ण मुक्त होता है।

सब स्वभावश चलते हैं। कर्म तो काल (ब्रह्म) ज्योति निरंजन ने लगा रखे हैं। वही अज्ञान पैदा करके जीव को भ्रमित करता है। वास्तविक ज्ञान (पूर्ण परमात्मा का) अज्ञान (काल ज्ञान) के द्वारा दबा रखा है। जिससे अज्ञानी (जिनको पूर्णब्रह्म परमात्मा का ज्ञान नहीं) मोहित हो रहे हैं। इस अज्ञान (काल ज्ञान) को तत्व ज्ञान (पूर्ण परमात्मा के ज्ञान) द्वारा नष्ट करके उत्तम ज्ञान को सूर्य की तरह प्रकाशित कर दिया जाता है। जिनको पूर्ण ज्ञान हो गया वह (व्यक्ति पूर्ण संत से नाम ले लेता है तथा काल साधना त्याग देता है क्योंकि सत्यनाम से पाप कटते हैं) अपने पापों को पूर्ण ज्ञान से समझ कर सतनाम व सारनाम से काट कर एक रस होकर अविनाशी परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) में स्थित हो कर जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

पंडित की परिभाषा

विचार करें :- अध्याय 5 के श्लोक 18 में पंडित की परिभाषा बताते हुए कहा है कि जो समदर्शी (ज्ञान योगी) तत्वदर्शी साधक (पंडित) तत्वज्ञानी, गौ, कुत्ते, हाथी व चाण्डाल को एक समझता है। वह जीवत मुक्ता कहलाता है तथा भगवान प्राप्ति के लिए (भक्ति में लग) चुका है। जो ऐसा नहीं करता, वह बेशक बात बनाए, चौरासी लाख योनियों का कष्ट भोगेगा तथा नरक में जाएगा। पंडित वही है जो छुआछात नहीं करता, जो चांडाल (नीच) को भी एक जैसा समझता है। सबमें परमात्मा को देखें तथा उस पर दया करे, धिक्कारे नहीं।

।। साहेब कबीर द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना।।

एक समय तोताद्रि नामक स्थान पर विद्वानों (पंडितों) का महा सम्मेलन हुआ। उसमें दूर-दूर के ब्रह्मवेता, वेदों, गीता जी आदि के विशेष ज्ञाता महापुरुष आए हुए थे। उसी महासम्मेलन में वेदों और पुराणों तथा शास्त्रों व गीता जी के प्रकाण्ड ज्ञाता महर्षि स्वामी रामानन्द जी भी आमन्त्रित किए गए थे। स्वामी रामानन्द जी के साथ उनके परम शिष्य साहेब कबीर भी पहुँच गए। श्री रामानन्द जी साहेब कबीर को अपने साथ ही रखते थे। क्योंकि स्वामी रामानन्द जी जानते थे कि यह कबीर (कविर्देव) साहेब परम पुरुष हैं। इनके रहते मुझे कोई ज्ञान और सिद्धि में पराजित नहीं कर सकता। सम्मेलन में इस बात की विशेष चर्चा हो गई कि श्री रामानन्द जी के शिष्य कबीर साहेब (छोटी जाति के) जुलाहा हैं। यदि हमारे भण्डारे में भोजन करेंगे तो हम अपवित्र हो जाएंगे। हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। यदि सीधे शब्दों में मना करेंगे तो हो सकता है श्री रामानन्द जी नाराज हो जाऐं क्योंकि श्री रामानन्द जी उस समय के जाने-माने विद्वानों में से एक

थे। यह सोच कर एक युक्ति निकाली कि भण्डारा दो स्थानों पर शुरु किया जाए। एक तो पंडितों के लिए, जो पंडितों (ब्राह्मणों) वाले भण्डारे में प्रवेश करे उसे चारों वेदों के एक-2 मन्त्र संस्कत में सुनाने पड़ेंगे। ऐसा न करने वालों को दूसरे भण्डारे में जो आम संगत (साधारण व्यक्तियों) के लिए बना है में जाएंगे। क्योंकि उनका मानना था कि श्री रामानन्द जी तो विद्वान (पंडित) हैं। वेद मन्त्र सुना कर उत्तम भण्डारे में आ जाएंगे तथा साहेब कबीर (कविर्देव) ऐसा नहीं कर पाएगें क्योंकि उन्हें वे पंडितजन अशिक्षित मानते थे। अपने आप आम (साधारण) भण्डारे में चले जाएंगे। फिर सतसंग (प्रवचन) चल रहा था। उसमें वही उपस्थित पंडित जन संगत में मीठी-2 बातें बना कर कथाएँ सुना रहे थे कि :-

एक अछूत जाति की भीलनी (शबरी) परमात्मा के वियोग में वर्षों से तड़फ-2 कर राह जोह रही थी कि मेरे भगवान राम आएंगे। मैं उन्हें बेरों का भोग लगाऊँगी। प्रतिदिन बहुत दूर तक रास्ता बुहार कर आती है। कहीं मेरे भगवान को कांटा न लग जाए। क्योंकि मेरे भगवान के पैर कोमल हैं न। मेरे भगवान राम बहुत अच्छे हैं। एक दिन वह समय भी आ गया कि भगवान श्री रामचन्द्र जी आते दिखाई दिए। भीलनी सुध-बुद्ध भूल कर श्री रामचन्द्र जी के मुख कमल की ओर बावलों की तरह निहार रही है। क्या मैं कोई स्वपन तो नहीं देख रही हूँ या सचमुच मेरे राम जी आए हैं। आँखों को मल-मल कर फिर देख रही है। श्री राम व लक्ष्मण खड़े-2 देख रहे हैं। इस पर लक्ष्मण ने कहा शबरी भगवान को बैठने के लिए भी कहेगी या ऐसे ही ठडेसरी (खड़े तपस्वी) बनाए रखेगी। तब मानो नींद से जागी हो। हड़बड़ा कर अपने सिर का फटा पुराना मैला-कुचैला चीर उतार कर एक पत्थर के टुकड़े पर बिछा दिया और कहा कि भगवन! बैठो इस पर। श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि नहीं बेटी, चीर उठाओ। यह कह कर उसका चीर उठा कर उसी के सिर पर रखना चाहा। भीलनी (शबरी) रोने लगी और रोती हुई ने कहा यह गन्दा (मैला) है न भगवान! इसलिए स्वीकार नहीं किया न। मैं कितनी अभागिन हूँ। आपके लिए उत्तम कपड़ा नहीं ला सकी। क्षमा करना भगवन। यह कह कर आँखों से अश्रुधार बह चली। तब श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि शबरी! यह कपड़ा मेरे लिए मखमल से भी अच्छा कपड़ा है। लाओ बिछाओ! फिर भगवान उसी मैले कुचैले चीर पर विराजमान हो गए और शबरी के आँसुओं को अपने पिताम्बर से पौंछने लगे। फिर शबरी ने बेरों का भोग भगवान को लगवाया। पहले बेर को स्वयं थोड़ा सा खाती (चखती) है फिर वही बेर श्री राम को अपने हाथों से खिला रही है। भगवान श्री राम ने उस काली कलूटी, लम्बे-2 दाँतों वाली मैली कुचैली, अछूत शबरी के हाथ के झूठे बेरों का भोग रूचि-2 लगाया तथा कहा शबरी, बहुत स्वादिष्ट हैं। क्या मिलाया है इन बेरो में? शबरी ने कहा आपका प्यार मिलाया है आपकी बेटी ने। फिर लक्ष्मण को भी दिए कि खाओ बेर। लक्ष्मण ग्लानि करके श्री राम जी के भय से खाने का बहाना करके हाथ में लेकर पीछे फैंक देता है। जो बाद में द्रौणागिरी पर (शबरी के झूठे बेर) संजीवनी बूटी बन गए और लक्ष्मण के युद्ध में मूर्छित हो जाने पर वही बेर फिर खाने पड़े। भक्त की भावना का अनादर हानिकारक होता है।

जब आस-पास के ऋषियों को मालूम हुआ कि श्री राम आए हैं। वो हमारे यहाँ आश्रमों में अवश्य आएंगे क्योंकि हम ब्राह्मण हैं और भगवान श्री राम (क्षत्री हैं) अवश्य आएंगे। जब ऐसा नहीं हुआ तो सर्व ऋषि जन बन में साधना करने वाले (कर्मसन्यासी) श्री राम को मिले तथा कहा भगवन! एक ही नदी है जो साथ बह रही है। उसका पानी गंदा हो गया है। कपया इसे स्वच्छ करने की कप्या करें।

कबीर साहेब द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना।

श्री राम ने कहा कि आप सर्व योगी जन बारी-2 अपना दायां पैर नदी के जल में डुबोएँ। फिर निकाल लें। सब उपस्थित ऋषियों ने ऐसा ही किया। परंतु जल निर्मल नहीं हुआ। फिर श्री राम ने उस प्रेमाभक्ति युक्त शबरी से कहा आप भी ऐसा ही करें। तब शबरी ने अपने दायां पैर नदी के जल में डाला तो उसी समय नदी का जल निर्मल हो गया। सर्व उपस्थित साधुजन शबरी की प्रशंसा करने लगे तथा शर्मिन्दा होकर श्री राम से पूछा कि प्रभु! क्या कारण है जो इस अछूत के स्पर्श मात्र से जल निर्मल हुआ जबकि हमारे से नहीं। तब श्री राम ने कहा - जो व्यक्ति परमात्मा का सच्चे प्रेम से भजन करता है तथा विकारों से रहित है वह उच्च प्राणी है। जाति ऊँची नीची नहीं होती है। आपको भक्ति साधना के साथ-2 जाति अहंकार भी है जो भक्ति का दुश्मन है। गीता जी भी यह सिद्ध करती है कि कर्मसन्यासी (गृहत्यागी) को अपने कर्त्तापन का अभिमान हुए बिना नहीं रहता। इसलिए कर्मयोगी (ब्रह्मचारी या गृहस्थी कार्य करते-2 साधना करने वाला) भक्त कर्म सन्यासी (गृहत्यागी) भक्तों से श्रेष्ठ हैं तथा जो पूर्ण परमात्मा की भक्ति करते हैं वो सर्वोत्तम हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि -

कबीर, पोथी पढ़–2 जग मुआ, पंडित भया न कोय। अढ़ाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।

प्रेम में जाति कुल का कोई अभिमान नहीं रहता है। केवल अपने महबूब का ही ध्यान बना रहता है।

(सतसंग समाप्त हुआ)

सत्संग समापन के पश्चात् भण्डारे का समय हुआ। दो ब्राह्मण वेदों के मन्त्र सुनने के लिए परीक्षार्थ पंडितों वाले भण्डारे के द्वार पर खड़े हो गए तथा परीक्षा लेकर वेद मन्त्र सुन कर भण्डारे में प्रवेश करवा रहे थे। साहेब कबीर (कविरग्नि) भी पंक्ति में खड़े अपनी बारी का इन्तजार कर रहे थे। जब साहेब कबीर की बारी आई उसी समय एक पास में घास चर रहे भैंसे को साहेब कबीर ने पुकारा - ऐ भैंसा! कप्पा इधर आना। इतना कहना था कि भैंसा दौड़ा-2 आया तथा साहेब कबीर के चरणों में शीश झुका कर अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। तब कविर्देव ने उस भैंसे की कमर पर हाथ रखकर कहा कि - हे भैंसा! चारों वेदों का एक-2 श्लोक सुनाओ! उसी समय भैंसे ने शुद्ध संस्कृत भाषा में चारों वेदों के एक-2 मन्त्र कह सुनाए। साहेब कबीर ने कहा - भैंसा इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी करो, कहीं पंडित जन यह न सोच बैठें कि भैंसा हिन्दी नहीं जानता। भैंसे ने साहेब कबीर की शक्ति से चारों वेदों के एक-2 मन्त्र का हिन्दी अनुवाद भी कर दिया। कबीर साहेब ने कहा - जाओ भैंसा पंडित! इन उत्तम जनों के भण्डारे में भोजन पाओ। मैं तो उस साधारण भण्डारे में प्रसाद पाऊँगा। कबीर साहेब जी की यह लीला देखकर सैकड़ों कथित पंडितों ने नाम लिया तथा आत्म कल्याण करवाया और अपनी भूल का पश्चाताप किया। साहेब कबीर ने कहा नादानों कथा सुना रहे थे शबरी और श्री राम की, आप समझे नहीं। अपने आप को उच्च समझ कर भक्त आत्माओं का अनादर करते हो। यह आप भक्तों का अनादर नहीं बल्कि भगवान का अनादर करते हो। जो गीता जी में कहते हैं कि अर्जुन कोई व्यक्ति कितना ही दुराचारी हो यदि वह भगवत विश्वासी है, साधु समान मान्य है।

अध्याय 9 का श्लोक 30

अनुवाद : (चेत्) यदि कोई (सुदुराचारः) अतिशय दुराचारी (अपि) भी (अनन्यभाक्) अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर (माम्) मुझको (भजते) भजता है तो (सः) वह (साधुः) साधु (एव) ही (मन्तव्यः) मानने योग्य है (हि) क्योंकि (सः) वह (सम्यक्) यथार्थ (व्यवसितः) निश्चयवाला है।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं :-

कुष्टि होवे साध बन्दगी कीजिए। वैश्या के विश्वास चरण चित्त दीजिए।।

ऐसे अनजानों को जो कहते कुछ और करते कुछ हैं। कबीर साहेब कहते हैं :-

कबीर, कहते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार। दोजख धक्के खाएगें, धर्मराय दरबार।।

कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिन रात। कुकर ज्यों भौंकत फिरै, सुनी सुनाई बात।।

एक समय नामदेव संत खाना बना रहे थे। कुत्ता रोटी उठा कर भाग लिया। वह संत घी का पात्र हाथ में ले कर पीछे-2 यह कहता हुआ चल पड़ा कि भगवन सूखी रोटी कैसे खाओगे? लाओ चुपड़ देता हूँ। काफी दूर निकल गए। वहाँ कुत्ता रूक गया। नामदेव जी रोटी को चुपड़ कर कुत्ते के सामने रखी दोनों इक्ट्ठा ही खाना खाने लगे। क्योंकि नामदेव जी को भगवान साक्षात् नजर आ रहे थे। आम व्यक्ति को कुत्ता नजर आ रहा था। यह लक्षण हैं पंडितों के। जब तक ऐसा नहीं है वह पंडित नहीं है अर्थात् भक्ति योग्य साधक नहीं है। यह गीता जी में भगवान का कथन है। जैसा कि आप पहले पढ चुके हैं गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 19 से 21 में। फिर प्रमाण है कि वही व्यक्ति मुक्त समझो जिसमें निम्न लक्षण हैं जो गीता जी के श्लोकों में निम्नलिखित हैं। अध्याय 5 के श्लोक 22 में कहा है कि हे अर्जुन! कर्मों के संयोग से उत्पन्न भोग (राज के लिए लड़ाई करना तथा फिर मौज मारना) नाशवान हैं। ज्ञानवान व्यक्ति इससे दूर रहता है तथा अध्याय 2 के श्लोक 37 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन तू युद्ध कर। यदि युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग में मौज मारेगा और यदि जीत गया तो राज का आनन्द लेगा।

अध्याय 5 के श्लोक 23 में बताया है कि :-

योगी की व्याख्या इस प्रकार है कि जो अपने काम-क्रोध को जीत लेता है वही योगी (परमात्मा प्राप्त) है और वही सुखी है।

विचारें : यह मन तथा इन्द्रियाँ तो शंकर जी जैसे योगी से भी नहीं जीते गए अन्य प्राणी अर्जुन (जिसने दो-2 शादी करवा रखी थी) जैसे साधक कैसे योग युक्त (परमात्मा प्राप्ति) हो सकता है।

'गरीब, कहन सुनन की करते बाता। कोई न देख्या अमंत खाता।।'

।। वार कौन तथा पार कौन।।

अध्याय 5 के श्लोक 24, 25, 26 में गीता ज्ञान दाता से अन्य परमात्मा की जानकारी बताई है। श्लोक 23 में कहा है कि जो सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि परम अक्षर ब्रह्म की शास्त्रोक्त साधना निश्चल मन से करता है तो उस अमर परमात्मा को प्राप्त होता है।

अध्याय 5 के श्लोक 24 में कहा है कि वह योगी (साधक) ही निर्वाण ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) को प्राप्त होता है। श्लोक 25 में भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) को पाने का वर्णन है तथा श्लोक 26 भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) पाने का प्रमाण देता है। जिसने काम-क्रोध समाप्त कर लिए वह व्यक्ति ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त समझो। यह क्षमता न ब्रह्माजी में, न शिव जी में, न विष्णु जी में फिर पार कौन? अर्थात वार ही ब्रह्मा, वार ही इन्द्र। वार का तात्पर्य है कि काल लोक में उरली तरफ ही रह गये, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं पहुँचे।

।। शब्द।।

कोई है रे परले पार का, जो भेद कहै झनकार का।।टेक।।

वारिही गोरख वारिही दत्त। वारिह धू प्रहलाद अरथ।।

वारिही सुखदे वारिही व्यास, वारिही पारासुर प्रकाश।।1।।
वारिही दुरवासा दरवेश, वारिही नारद शारद शेष।
वारिही भरथरी गोपीचन्द, वारिही सनक सनंदन बंध।।2।।
वारिही ब्रह्मा वारिही इन्द्र, वारिही सहंस कला गोविंद।
वारिही शिव शंकर जो सिंभ, वारिही धर्मराय आरंभ।।3।।
वारिही धर्मराय धरधीर। परमधाम पौंहचे कबीर।।
ऋग यजु साम अर्थवन वेद, परमधाम नहीं लह्या भेद।।4।।
अलल पंख अगाध भेव, जैसे कुंजी सुरति सेव।
वार पार थेहा न थाह, गरीबदास निरगुन निगाह।।5।।

भावार्थ :- इस शब्द में आदरणीय गरीबदास जी साहेब कह रहे हैं कि कोई सतलोक का साधक नहीं दिखाई देता है जो उस सच्चे शब्द की धुन को बताए। केवल काल लोक में बने नकली सतलोक- अलख लोक, अगम लोक तथा अनामी लोक की नकली धुनों को वर्णन करने वाले साधक हैं।

धुनि क्या है? उत्तर :- ढ़ोल यंत्र को बजाने के लिए एक विशेष प्रकार के डंडे का प्रयोग किया जाता है जिसको ढ़ोल पर मारा जाता है। उससे वास्तविक आवाज (धुनि) निकलती है। यदि उस ढोल पर कोई और वस्तु जैसे चप्पल व जूता मारे तो भी धुन तो होगी परंतु वह वास्तविक नहीं होगी। इसी प्रकार धुनि सही नाम (सतनाम) के जाप से वास्तविक धुनि प्रकट होगी। यदि कोई गलत नाम जाप कर रहा है धुनि उसमें भी प्रकट होगी परंतु सही नहीं होगी। इसलिए निम्न साधकों ने कोशिश की परंतु सतनाम साधना बिना उरली ओर (काल-ब्रह्म) के जाल में वार ही रहे, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं गए। जबकि बहुत अच्छे साधक थे। जैसे कितनी ही उपजाऊ भूमि है यदि उसमें आम के स्थान पर बबूल का बीज बीज दीया जमीन ने तो उपजाना है परंतु जो वस्तु चाहिए थी नहीं मिली। जिन महापुरुषों में -- 1 श्री गोरख नाथ जी 2. श्री प्रहलाद जी 3. श्री ध्रूव जी 4. श्री दतात्रे जी 5. श्री सुखदेव जी 6.श्री वेद व्यास जी 7. श्री पाराशर जी 8. श्री दुर्वासा जी 9. श्री नारद जी 10.श्री सारदा जी 11. श्री शेषनाग जी 12. श्री भरथरीनाथजी 13.श्री गोपीचन्द नाथ जी 14. श्री सनक जी 15. श्री सनन्दन जी 16. श्री सनातन जी 17. श्री संत कुमार जी (ये चार ब्रह्मा के पुत्र भी महर्षि हैं जो बहुत अच्छे साधक हैं परंतु सतनाम व सारनाम बिना काल के जाल में ही बंधे हैं, पार नहीं हुए हैं) 18. श्री ब्रह्मा जी 19. श्री इन्द्र जी 20. श्री काल भगवान जो एक हजार कलाओं वाला है 21. श्री शिव शंकर जी 22. श्री विष्णु जी 23. श्री धर्मराय जी जो यहां (काल) का न्यायधीश है।

ये प्रभु तथा इनके उपासक भी जन्म-मरण तथा काल जाल में ही हैं। आदि माया (प्रकति देवी) और देवता भी काल के बंधन में बंधे हुए हैं।

''कबीर, सुर नर मुनि जन, तेतीस करोरि, बंधे सब निरंजन (काल) की डोरी।।''

भावार्थ :- इस ब्रह्माण्ड में तेतीस करोड़ देवता हैं और अठासी हजार ऋषि हैं। ये तथा अन्य भक्ति के इच्छुक नर-नारी तत्वज्ञान न होने के कारण काल ब्रह्म की डोर से बँधे हैं यानि काल की रस्सी सबके गले में बँधी है।

सर्व देवता व साधक जो ब्रह्म की उपासना चाहे सर्गुण रूप में कर रहे हैं और चाहे निर्गुण रूप में कर रहे हैं वे जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट व फिर स्वर्ग नरक कर्माधार से चक्र लगाते रहते हैं। पूर्ण मोक्ष के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। ये सब काल जाल में ही हैं। क्योंकि

इनको सतनाम व सारनाम का दाता कोई पूर्ण संत नहीं मिला। परम धाम (सतलोक) में साहेब कबीर जी पहुँचे जो सतनाम व सारनाम की उपासना को आधार मान कर सुमरण स्वयं करते थे तथा अपने शिष्यों को बताते थे। चारों वेदों (यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद) में भी परम धाम को पाने की विधि का ज्ञान नहीं है। साहेब गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि मैंने सतनाम को साहेब कबीर (अपने सतगुरु) जी से प्राप्त किया। फिर ऐसी लगन लगाई जैसे अलल पक्षी अपने माता-पिता को पाने की जो आकाश में रहते हैं कोशिश करता है तथा कुंज पक्षी की तरह पल-पल कसक के साथ अपने सतलोक में जाने की तथा सतपुरुष को पाने की हृदय से लगन लगा कर स्मरण किया जिससे वह अपार असीमित लोक पाया और उस निर्गुण (गुणातीत सतपुरुष) को तेजपुंज के शरीर में देखा। जिसे पाँच तत्व के शरीर रहित होने से अधूरे साधक निराकार परमात्मा कहते हैं वह आकार में अपने सतधाम (सतलोक-परमधाम) में रहता है।

।। अजपा जाप से विकार मरते हैं।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 27-28 का अनुवाद :- बाहर के विषय भोगों से मन को हटाकर शरीर के अंदर चल रहे श्वांस से नाम स्मरण करते हुए श्वांस व नाम जाप पर ध्यान लगाऐं। श्वांस-उश्वांस जो भंकुटी यानि दोनों नाक छिद्रों के मध्य सुषमणा द्वार से अंदर-बाहर होता है, उसको सम करके यानि अभ्यास से साधक साधना करता है। वह मोक्ष का अधिकारी मुनिः यानि साधक इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो जाता है। जो ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह संसार में रहता हुआ भी मुक्त ही है।(अध्याय 5 श्लोक 27-28)*

विचार करें :-- अध्याय 5 के श्लोक 27, 28 में वर्णन है कि श्वांस के द्वारा सतनाम सुमरण से ही मन तथा विकारों को मार सकता है। वही मुक्त होगा। ''*श्वांसा पारस भेद हमारा, जो खोजे सो उतरे पारा।*'' *मन स्वयं काल का अंश है जो एक हजार भुजाओं का भगवान है। मन तथा विकारों को केवल कबीर साहिब (जो असंख्य भुजाओं के मालिक अर्थात् समर्थ भगवान हैं) के सुमरण (नाम) से मारा जा सकता है। इसके इलावा अन्य जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश व काल के जाप से मन काबू नहीं आ सकता। श्वांस सुमरण (सतनाम के जाप) से विकार मरते हैं। इसका प्रमाण आदरणीय नानक साहेब जी ने भी दिया है। पंजाबी गुरु ग्रंथ साहिब के पष्ठ नं. 646 (रामकली राग पौड़ी नं. 68,69) में पूछ रहा है कि संसार में किस-किस कारण से जन्म-मरण होता है तथा कैसे समाप्त होता है? कित् कित् विधि जग उपजै पुरखा, कित् कित् विधि बिनस जाई? उतर दिया हैः-*

हुऊमें विच जग उपजै पुरखा, नाम बिसारे दुःख पाई।।
गुरु मुख होवै ज्ञान तत विचारै, हुऊमें सबदै जलाई।।
तन मन निरमल निरमल बाणी, साचै रहै समाई।।
नामे नामि रह बैरागी साच रखिया उर धारै।।
नानक बिन नाम जोग कदे न होवै, देखहु रिदै विचारै।।68।।

उत्तर दिया है कि विकारों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) के वश हो कर जीव जन्म-मरण में रहता है। सच्चे परमात्मा (सतपुरुष) के सच्चे नाम (सतनाम) से विकार समाप्त हो जाते हैं तथा नाम के बिना योग अधूरा है। इसलिए पूर्ण गुरु सेवै।
गुरुमुख साच शब्द बिचारै कोई। गुरुमुख सच वाणी प्रकट होई।।

गुरुमुख मन भीजै बुझै बिरला कोई। गुरुमुख निज घर वासा होई।।
गुरुमुख जोगी जूगत पछाणै। गुरुमुख नानक इको जाणै।।69।।

साच शब्द का प्रमाण तथा हुवमें विकारों को मारने का प्रमाण :–

पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहेब पष्ठ नं. 59.60 (राग सिरी - महला पहला) से सहाभार (शब्द नं. 11)

बिन गुरु प्रीत न उपजै हुवमें मैल न जाई। सोहं आप पछाणिया, शब्दई भेद पतिआई।।
गुरु मुख आप पछाणिअै, अवर की करे कराई।

गुरु जी के मिले बिना विकार व मन नहीं मर सकते। सतगुरु ने सोहं नाम दिया (सर्व नामों में उत्तम नाम सोहं दिया) अब और कोई साधना क्यों करें? जब एक ही पूर्ण नाम (सतनाम) से पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया। पूर्ण गुरु का शिष्य एक ही पूर्ण परमात्मा पर आधारित हो जाता है। फिर सारनाम प्राप्त करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

।। दयालु परमात्मा कौन?।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 29 का अनुवाद :- गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म ने कहा है कि तत्वज्ञान के अभाव से मुझ काल को यज्ञ तथा तपों को भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर यानि महेश्वर, सम्पूर्ण प्राणियों का सुहृद यानि स्वार्थ रहित दयालु तथा हितैषी जानकर (शान्तिम्) शांति को (ऋच्छति) गंवा देता है।*

विवेचन :- ''ऋच्छति'' शब्द का यथार्थ अर्थ है वंचित रहना। अन्य गीता अनुवादकों ने गलत अर्थ किया है कि मुझे सर्वेसर्वा जानकर साधक (शान्तिम्) शांति को (ऋच्छति) प्राप्त होता है। यह वैसी ही गलती है जैसी गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में ''व्रज'' का अर्थ ''आना'' किया है जबकि ''व्रज'' शब्द का यथार्थ अर्थ ''जाना'' है।

विशेष :- गीता अध्याय 5 श्लोक 29 में गीता बोलने वाले ब्रह्म काल ने कहा है कि जो अज्ञानी जन मुझे ही सर्व का मालिक व सर्व सुखदाई दयालु प्रभु मान कर मेरी ही साधना पर आश्रित हैं, वे मेरी साधना से मिलने वाली अश्रेष्ठ अस्थाई शान्ति को प्राप्त होते है जिस कारण से वे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने से मिलने वाली शान्ति से वंचित रह जाते हैं अर्थात् उनका पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाते रहते हैं। इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि यदि पूर्ण शान्ति चाहता है तो अर्जुन उस परमेश्वर की शरण में जा जिसकी कपा से ही तू परमशान्ति तथा शाश्वत स्थान को प्राप्त होगा। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में भी है। अपनी साधना से होने वाली गति (मुक्ति) को अनुत्तम यानि घटिया कहा है।

विशेष : क्योंकि काल (ब्रह्म) भगवान तीन लोक के (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवानों तथा 21 ब्रह्मण्ड के लोकों का मालिक है। इसलिए ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसलिए महेश्वर कहा है तथा जो भी साधक यज्ञ या अन्य साधना (तप) करके जो सुविधा प्राप्त करता है उसका भोक्ता (खाने वाला) काल ही है। जैसे राजा बन कर आनन्द करना, नाना प्रकार के विकार करना। इन सब का आनन्द स्वयं काल भगवान मन रूप से प्राप्त करता है तथा फिर तप्त शिला पर गर्म करके उससे वासना युक्त पदार्थ निकाल कर खाता है। अज्ञानतावश नादान प्राणी इसी काल भगवान को दयालु व प्रेमी जान कर शांति को प्राप्त हैं। जैसे कसाई के बकरे अपने मालिक (कसाई) को देखते हैं कि वह चारा डालता है, पानी पिलाता है, गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसलिए उसे दयालु तथा प्रेमी समझते हैं परंतु वास्तव में वह कसाई उनका काल है। सबको काटेगा, मारेगा तथा स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे ही काल भगवान दयालु दिखाई देता है परंतु सर्व प्राणियों को खाता है। इसलिए कहा है कि उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् महाकष्ट को प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक

17 में कहा है कि उत्तम पुरूष अर्थात् श्रेष्ठ परमात्मा तो कोई अन्य ही है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है वह वास्तव में अविनाशी है। वह परमात्मा कहा जाता है। अपने विषय में गीता ज्ञान दाता अध्याय 11 श्लोक 32 में कहता है कि अर्जुन मैं काल हूँ, सर्व लोकों (मनुष्यों) को खाने के लिए आया हूँ। जिस के दर्शन करके अर्जुन जैसे योद्धा की शान्ति भी चली गई वह भय के मारे कांप रहा था। इसलिए इसी अध्याय 5 श्लोक 24 से 26 में गीता ज्ञान दाता से अन्य शान्त ब्रह्म का उल्लेख है। इससे यह भी प्रमाणित हुआ कि गीता ज्ञान दाता शान्त ब्रह्म नहीं है। अर्थात् काल है।

सार - विचार :-- जो कुत्ता बनाए, गधा बनाए, टांग काटे (क्योंकि यहां सर्व भक्तजन मानते हैं कि परमात्मा की कप्या से सब होता है। उसके आदेश के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।) सबको खाए तथा अर्जुन जैसे योद्धा को डराकर युद्ध करवाए तथा फिर युद्ध में हुए पापों का फल युधिष्ठर को बुरे स्वपन आना, फिर कष्ण जी द्वारा बताना कि आप यज्ञ करो क्योंकि आपके युद्ध में किए हुए पाप दुःखदाई हो रहे हैं। फिर हिमालय में तप करवा कर शरीर गलाना, फिर नरक में डालना। अब पाठक स्वयं विचार करें।

दयायुक्त परमेश्वर कबीर साहेब जी हैं जो सतलोक के स्वामी हैं। वे सुख सागर हैं। वहाँ कोई जीव दुःखी नहीं है और यहाँ (काल लोक में) भी यदि कोई भक्त जन सुखी होना चाहता है तो उसी परम पिता परमात्मा, पूर्णब्रह्म, अविनाशी परमेश्वर कबीर भगवान की उपासना करें तथा आजीवन शरण में रहें।

❑❑❑